नया साहित्य

देशकी नयी साहित्यिक चेतनाका प्रतिनिधि

५

सम्पादक मंडल

यशपाल, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान
प्रकाशचन्द्र गुप्त, पहाडी

सम्पादक

नरेन्द्र शर्मा, अमृतलाल नागर, रमेश सिनहा
शमशेर बहादुर सिंह

जन-प्रकाशन गृह
राजभवन, सैण्डहर्स्ट रोड, बम्बई ४

मूल्य एक रुपया

सूची

लेख

कहानी

उपन्यासका अंश

कविता

सांस्कृतिक जागरण

आलोचना

भूल-सुधार

पृष्ठ	कविता	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७	'हिमन्ती बयार'	दूसरी पंक्ति	पहुँची	पछी
६६	'रनिया'	अन्तिम छंद	हिंदुस्तान	हिन्दुस्तान

मुद्रक—शरफ अतहर अली, न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, १९० बी, खेतवाडी मेन रोड, बम्बई
प्रकाशक—शरफ अतहर अली जन-प्रकाशन गृह, राजभवन, सॅण्डहर्स्ट रोड, बम्बई

मैथिलीशरण गुप्त
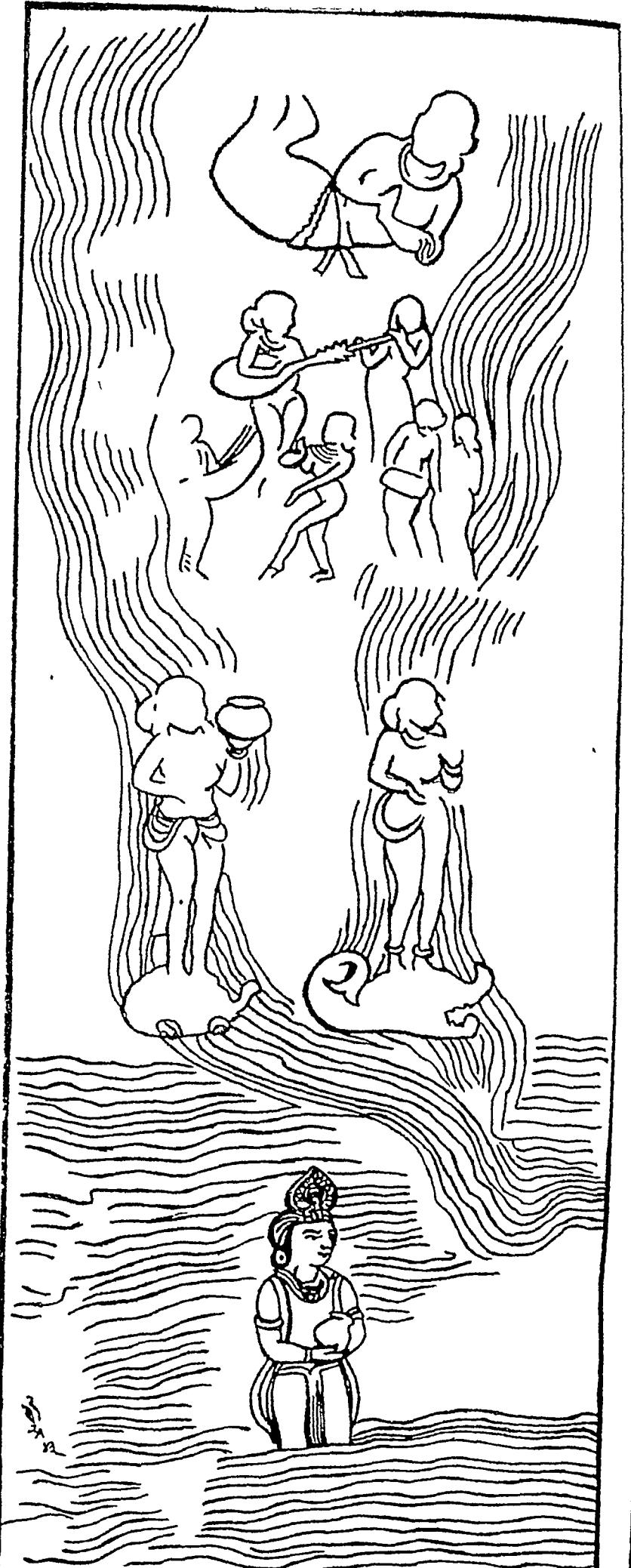
नया साहित्य भाग ५

भारतीय साहित्यमे जन्मभूमिकी कल्पना·

उदयगिरि (भेलसा) की गुफामे अंकित एक चित्र, गगा, यमुना, उनके सगम और अतमे उनके मे मिलनेका दृश्य, ५, पृष्ठ उन्नीस)

नया साहित्य

भारतीय साहित्य और कलामें जन्मभूमिकी कल्पना

मोतीचन्द्र

१

माताभूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः

'धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं।"

आजसे करीब ३,००० वर्ष पहले अपनी मातृभूमिके बाह्य और आभ्यन्तरिक सौंदर्य से प्रभावित होकर अथर्ववेदमें पृथिवी-सूक्तका रचयिता यह मंत्र गा उठा। उस महान् सूक्तकारकी दृष्टिमें उसकी मातृभूमि मिट्टी, पहाड़ों, जंगलों और नदियोंसे बनी केवल एक महती भूमिखंड ही नहीं है, उसके लिए तो धरती जीती-जागती माता है जिसके दूधसे पलकर हम प्राणवान होते हैं, जिसकी आंचलमें छिपी धनराशिको पाकर हम संसारके सुखोंको भोगते हैं, जिसपर हम जीते हैं, हँसते हैं, लड़ते झगड़ते हैं और अंतमें मरकर फिर उसीमें मिल जाते हैं।

ईसाके करीब दो हजार वर्ष पहले आर्योंके काफले मध्य-एशियाके रेगिस्तान पार करते हुए पूर्वी अफगानिस्तानके रास्ते पंजाबमें आये और सरहदी सूबे और पंजाबमें बसकर उन्होंने हमें ऋग्वेदके मंत्र दिये। पंजाब और सरहदकी पयस्वती नदियोंका उन्होंने वर्णन किया और अपनी धरतीकी उन्हें महत्ता मालूम पड़ी, पर अभी उन्होंने भारतका एक कोना ही देखा था इसलिए उनकी दृष्टि सीमित थी। धीरे धीरे आर्य-सभ्यता आगे बढ़ी। आर्यवीरोंके अप्रतिहत रथके भाले और उनके यज्ञकुंडकी अग्नि उनकी सभ्यताके प्रतीक बने और धीरे धीरे आर्य-सभ्यता बिहार तक जा पहुंची। इस आर्य सभ्यताके प्रसारका सुंदर वर्णन शतपथ ब्राह्मण-[१,४,१,१०-१७] मे कथारूपमें दिया हुआ है। कथा यह है:

इस लेखकी सामग्री के लिए मैंने डॉ० वासुदेवशरण जी के लेखोंसे मदद ली है जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। ——ले०

"एक समय राजा विदेघ माथवने अग्नि वैश्वानरको अपने मुँहमें बंद करलिया। राजाके पुरोहित गौतम राहुगणने राजासे प्रश्न किया लेकिन राजाने डरके मारे कि कही अग्नि उनके मुखसे चू न पडे, प्रश्नका उत्तर न दिया। पुरोहितने ऋग्वेदके बहुतसे मंत्रोसे अग्निका आवाहन किया लेकिन नतीजा कुछ न निकला। लेकिन एक मंत्रमें घृतका नाम आते ही मारे लालचके अग्निदेव जमीनपर टपक पडे। जब यह घटना घटी तो विदेघ माथव सरस्वतीके किनारे रहते थे। जमीनपर गिरे अग्नि प्रज्वलित होती हुई पूर्व दिशाकी ओर चल पड़ी और विदेघ माथव और गौतम राहुगण उसके पीछे पीछे हो लिये। रास्तेमें अपने प्रचंड ज्वलनसे नदियाँ सुखाते हुए अग्निदेव उत्तर हिमालयसे निकली सदानीरा नदीपर आ पहुँचे। यहाँ अग्निकी ज्वलन शक्ति शात हुई। प्राचीन कालमें ब्राह्मण इस नदीको पार नहीं करते थे, क्योकि अग्नि वैश्वानरने उसे जलाया नही था। लेकिन शतपथ ब्राह्मणके कालमे बहुतसे ब्राह्मण नदीसे पूर्वमें भी रहने लगे थे। उस कालमे जब अग्नि वैश्वानर सदानीराके किनारे आकर स्थित हो गये सदानीराके पूरब खेती नहीं होती थी और बहुतसे दलदल थे। खेती न होनेका कारण शतपथके अनुसार भूमिसे वैश्वानर अग्निका साक्षात्कार न होना था। शतपथके कालमे वहाँ खेती होती थी और गरमीमें भी नदीमे ठंडा पानी जोरोसे वहता रहता था। राजा विदेघ माथवने जब अग्नि वैश्वानरसे अपना स्थान पूछा तो उसने नदीके पूरबकी भूमिकी ओर इशारा किया। शतपथके कालमे सदानीरा नदी कोशल और विदेहकी राज्य सीमाओको अलग करती थी।"

ऊपरकी अनुश्रुति हमें पूर्वकी ओर बढती हुई आर्य-सभ्यताकी तीन धाराओंकी ओर सकेत करती है। सबसे पहले जैसा कि हमें अनुश्रुति वतलाती है, आर्योंकी भू प्रतिष्ठा पंजाबसे सरस्वती नदीतक फैल चुकी थी। वहाँसे वैदिक-सभ्यता विदेघ माथव और उनके पुरोहित गौतम राहुगणकी अध्यक्षतामें सदानीरा (आधुनिक गंडक) तक पहुँचकर रुक गयी। कुछ दिनोतक नदी पार करके आर्योंकी हिम्मत आगे वढ़नेकी नही हुई लेकिन शतपथके कालमें वे सदानीरा पार करके उस नदीके पूरवमे वस गए थे। इस कथामें अग्नि वैश्वानर आर्य-सभ्यताका प्रतीक माना गया है, क्योकि वैदिक सभ्यता का प्रधान अग उनकी यज्ञ परिपाटी थी।

भूमिपर जनका सन्निवेश भारतीय आर्य-सभ्यताके इतिहासकी एक महान् घटना है। अनेक कष्टोको झेलते हुए तथा इस देशके आदिम निवासियोसे लड़ते भिडते जव आर्योंके पैर इस पृथिवी पर टिक गये तव उन्होने भूप्रतिष्ठा प्राप्तकी। यह विशाल देश उनका होगया और इस देशका प्रेम उनके हृदयमे ऐसा समागया कि वे कहासे आये

थे, इसका पता भी देना वे भूल गये। यह भूप्रतिष्ठा या भू-मापन आरभिक युगमें भूमि पर जनके सन्निवेशकी सज्ञा है और इसकेलिए अग्रेजीमें 'लेड टेकिग' शब्द है और आइसलेडकी भाषामें इस पवित्र घटनाको 'लेड नामा' कहते हैं। जैसा श्री वासुदेव जीने कहा है [नागरी प्रचारिणी पत्रिका विक्रमाक, स० २,०००, पृष्ठ,६१]--"पृथिवी पर सर्व प्रथम पैर टेकनेका भाव जनके हृदयमें गौरव उत्पन्न करता है। जनकी ओर से कवि कहताहै—मैंने अजीत, अहत और अक्षत रूपमे सबसे पहले इस भूमिपर पैर जमाया था--"

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्

—पृथिवी सूक्त, १२, १, ११

लेकिन किसी भूमिपर पैर जमानेकी क्रिया सहज नहीं है। इसके लिए लड़ना पड़ता है, कष्ट सहने पडते हैं और बहुधा अपनी जाने भी गॅवानी पडती हैं। वैदिक साहित्यमे बहुतसे ऐसे स्थल आये है जिनसे पता चलता है कि वैदिक आर्य अपनी इस भूप्रतिष्ठामे देवोसे क्रियाशीलता और शक्तिका वरदान मॉगते हैं। भूप्रतिष्ठाके लिए सन्तत सचरणशीलताकी भी बड़ी आवश्यकता थी। वैदिक आर्योंके प्रधान देव इन्द्रने ऐतरेय ब्राह्मण [७,१४] में वलिपुरुषकी खोजमें भटकते हुए रोहितको इसी सचरणशीलताकी शिक्षा दी।

> "हे रोहित! श्रमसे थके हुए जनको ही श्री मिलती है, ऐसा हमने सुना है। जन समूहमे अक्रियाशील जनको पाप धर दबाता है। इंद्र उसीका सखा है जो बराबर चलता रहता है, इसलिए चलते रहो, चलते रहो (चरैवेति चरैवेति)। सचरणशील पुरुषकी जंघाऍ फूलकी तरह खिल उठती हैं, उसका शरीर विकसित होकर फल प्राप्त करता है, उसके सब पाप थककर सोये रहते हैं, इसलिए चलते रहो, चलते रहो। बैठेहुएका भाग्य बैठा रहता है, खड़े होनेवालेका सौभाग्य खडा होजाता है, पडे रहनेवालेका सौभाग्य पडा रहता है, और उठकर चलनेवालेका सौभाग्य चल पड़ता है, इसलिए चलते रहो, चलते रहो। सोनेवालेका नाम कलि है, अगड़ाई लेनेवालेका नाम द्वापर है, उठकर खडे होनेवाला त्रेता है और चलनेवाला कृतयुगी कहलाता है, इसलिए चलते रहो, चलते रहो। चलता हुआ मनुष्य मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्यका परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।"

यह महान् वैदिक मंत्र हमे जागरूकता और सचरणशीलताका महान उपदेश देता है। गति-स्थिर मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, कलियुगके पाप सोनेवालेको,

दावे रहते हैं लेकिन संचरणशील मनुष्यके लिए विशाल पृथिवीका कोना कोना खुला हुआ है। वाधाओंका वह हँसते हँसते सामना कर सकता है, नदियाँ, पहाडो, जंगलोको पार करता हुआ वह अबाध गतिसे अपने गन्तव्य स्थानको पहुँच सकता है, उसे न तो देवताओके सहारेकी आवश्यकता पडती है और न वह मंत्र तंत्रोंके सहारे ही अपने पैर टिकाना चाहता है। उसका तो महामंत्र है सचरणशीलता और उसीके सहारे वह उन्नतिके पथ पर अग्रसर होता है। उपरोक्त मंत्र आया तो है ऐतरेय ब्राह्मणमें, जिसका समय शायद ई.पू. ८०० हो लेकिन उसमें जो एक विशेष ध्वनि है, उससे पता चलता है कि यह मंत्र शायद उस वैदिकयुगका हो जव आर्य भारतवर्षमें भूप्रतिष्ठा कररहे थे और जब उन्हे कठिनाइयोका सामना करनेकेलिए और आगे वढनेकेलिए क्रिया-शीलताके उपदेशकी वहुत आवश्यकता थी।

संचरणशीलताके साथ ही साथ भूप्रतिष्ठाके लिए 'कर सकने' की शक्तिकी भी वड़ी आवश्यकता थी। हम जितना 'कर सकते' हैं वही हमारे जीवनकी कसौटी है। प्राचीन कालमें वच्चोको दूध पिलाते समय माता यह आशीर्वादात्मक वाक्य कहतीथी —'हे पुत्रो तुम इसजीवनमे शाक्वरीव्रतके पारगामी वनो [गोभिलगृह्यसूत्र, ३।२।७९, रौरुकिब्राह्मण]। शाक्वरीका अर्थ है कर सकनेकी शक्ति और इसके विना भूप्रतिष्ठाका काम चल ही नहीं सकता था। प्रजापतिने अपने तपसे सृष्टिका सृजन किया और प्राणि-मात्रको शक्तिसे समन्वित किया, यही शक्ति शाक्वरी हुई [ऐतरेय ब्राह्मण, ५।७]। इन्द्रने जिस शक्तिसे वृत्रका वध किया, उसका नाम भी शाक्वरी है [कौषीतकी ब्रा २३।२], इन्द्रवज्र भी शक्वरी शक्ति [शाक्वरी वज्र —तै २।१।५।११] से बना हुआ है। अर्थात् वैदिक आर्योंके प्रधान देवता इन्द्रके वज्रकी शक्ति उसके 'करसकने' की शक्तिमें निहित थी। इन सब उद्धरणोके देनेका तात्पर्य यही है कि भू-प्रतिष्ठाके लिए सन्नद्ध आर्य उस 'कर सकने'की शक्तिसे भली भाँति अवगत थे और इस कर्मशीलताको अपनाकर ही वे इस भूमिपर अपने पैर दृढतासे टिका सके, और भारतकी आदिम सभ्यताएं उनके मार्गमे वाधाएँ न डाल सकीं।

गोभिल सूत्रमें कहा गया है कि प्राचीन कालमे ब्रह्मचारी अपना वेदाध्ययन समाप्त करके विशेषरूपसे शाक्वरी व्रतकी आराधनाके लिए आचार्यके पास ठहर जाते थे और शाक्वरी व्रतकी अवधिमे उन्हें सामवेदान्तर्गत महानाम्नी ऋचाओका अध्ययन और पारायण करना पडता था। इन मंत्रोमें इन्द्रको पूर्वजोकी शक्तियोका अधिपति कहा गया है और नवजागरणमें उन शक्तियोके पुनर्दर्शनकी आकाक्षा प्रगट कीगयी है। साथ ही साथ इन्द्रकी अबाधित गतिका रथ-चक्रोमें आवाहन किया गया है 'हे शूर! अपनी समस्त रक्षण शक्तिसे हमारी रक्षा करो। अभ्युदय और रक्षाके लिए तुम्हारा सान्निध्य हमे प्राप्त हो। हे अद्वितीय सखे! तुम्हारी विजय चिरजीवी हो।' जिस समय शक्तिका

आवाहन करती हुई महानाम्नी ऋचाएं गूँजने लगती हैं, उस समय प्रजाएँ अलौकिक शक्तिसे आप्लावित होकर घोष करती है ।—

एवा ह्येव । एवा ह्येव—ऐसा ही होगा ऐसा ही होगा

इसी भूप्रतिष्ठाके लिए आर्योंकी ललकार 'संगच्छध्वं, संगच्छध्वं' वादके उपनिषद-साहित्यमे भी मिलती है । साथ चलनेकी प्रेरणा भूप्रतिष्ठाके समय आवश्यक भी थी, अगर टुकडे टुकड़े होकर आर्य इस देशमे पैर जमानेकी चेष्टा करते तो इस महान् देश के महाकान्तारों और पर्वतोमे उनका पता भी नहीं चलता ।

अथर्ववेदकी सभ्यतासे यह पता चलता है कि आर्य पूर्णरूपसे इस देशको अपना चुके थे । ऋग्वेदकी प्रकृति पूजासे जब हम अथर्ववेदके जादू टोनोकी तुलना करते है, तब हमे पता चलता है कि प्राग्-आर्य भारतकी विजित सभ्यता किस प्रकार विजेताओपर अपना रग चढा रही थी । पर्वतों और कान्तारोंमे छिपे हुए भूत-प्रेत, तक्मा ऐसे भयंकर ज्वर केवल जादू टोने और वैदिक देवताओकी प्रार्थनाओसे ही दूर हो सकते थे । लेकिन इन सब अधविश्वासोंको मानते हुए भी आर्योंके हृदयमे अपनी मातृभूमिके लिए एक अभूतपूर्व प्रेमकी सृष्टि हुई जिसका उद्गार हम अथर्ववेदके पृथिवी-सूक्त [१२।१।१।६२] मे पाते हैं । यह कहना कठिन है कि पृथिवी-सूक्तमे देशके प्रति जो विचार प्रगट किये गये है, उनमेसे कितने विचार देशके उन आदिम निवासियोके हैं जिनमे आजदिन भी धरती-माता मानी जाती है । बैगा धरतीको अपनी माता मानते है और इसकी पूजा करते है क्योंकि उनके सब देवताओंमे केवल धरती-माता ही ऐसी है जो बैगोको अपने बच्चोकी तरह प्यार करती है । [वेरियर एलविन, दि बैगा, पृ. ५८-५९] । धरतीकी तरफ उनकी इतनी आस्था है कि उसकी छातीपर हल तक चलाना वे पाप समझते हैं । शराब पीते समय भी वे अपनी धरती माताको नहीं भूलते और एक बूँद उसे चढ़ाकर तब शराब पीते है । धरतीका यह प्रेम केवल वैदिक आर्योंतक ही सीमित नही था । फ्रेजर हमे बताते हैं कि ग्रीस, रोम, चीन अफ्रीका और अमेरिकामे भी धरती-पूजाका प्रचार था [फ्रेजर—दी वर्शिप ऑफ नेचर, चेप्टर ६–११] । लेकिन वैदिक आर्योंकी मातृभूमिकी कल्पनामे आधिदैविक और आधि भौतिक विचारोका एक इस सामंजस्य है जो वैदिक आर्योंकी विचार धाराकी एक खास देन है ।

पृथिवी सूक्तमे जन्मभूमि आधिदैविक और स्थूल रूपोका बहुतही विशद विवेचन किया है, [देखो, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, स. २०००, पृथिवी सूक्त--एक अध्ययन] भूमिके आधिदैविक रूपको स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं कि विश्वमे जो सर्वोच्च ज्ञानका स्रोत परम व्योम है, उसीमें पृथ्वीका हृदय स्थित है । यह हृदय सत्यसे घिरा हुआ और अमर है—**यस्याः हृदयं परमे व्योमन्**

सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः। ऋषिके कहनेका तात्पर्य यह है कि जन और पृथ्वीमें जो एक अभेद्य संबंध है, उस संबंधका आश्रय सत्य है। दूसरे शब्दोमे हम उसी सत्यको धर्म कहते हैं अथवा धारण करनेकी शक्ति। धर्मसे यहाँ हमारे धार्मिक विचारोसे तात्पर्य नहीं है। यहाँ तो उसके माने है सत्याचरणकी वह शक्ति, जो प्रजाओको एक सूत्रमे सन्नद्ध रखती है और उनको प्रगतिके पथ पर आगे ले चलती है। जहाँ धर्मका बंधन ढीला हुआ कि हमारे सामने आत्मिक और भौतिक आराजकता उपस्थित होकर हमे प्रगतिके पथसे सैकड़ो कोस दूर हटा देती है। ऐसे अवसरोपर जब समाज सत्पथसे हटकर अवनतिके गड्ढेमे गिरने जारहा हो, पृथिवी व्याकुल हो उठती है क्योकि वह हमारी मां है। पुराणोमें एक विलक्षण कल्पना द्वारा बतलाया गया है कि जब जब धर्मकी अवनति होती है और पृथिवीपर अनाचार बढ जाते हैं तब तब पृथ्वी गायका रूप धारण करके देवताओसे धर्मके पुनः स्थापनकेलिए प्रार्थना करती है। कहनेका तात्पर्य यही है कि अनाचारसे पृथिवी कभी टिक नहीं सकती। शायद कुछ प्रगतिवादी ऊपरके मंत्रमे इस बातकी शंका उठाएँ कि इस मंत्रका संकेत एक ऐसी सनातन व्यवस्थाकी ओर है जो वैदिक युगके लिए तो ठीक रही हो लेकिन भला आजके संघर्षके युगमे वह कैसे ठीक हो सकती है। ऐसी कल्पनाएँ केवल भारतीय विचारधाराके अज्ञानकी परिचायक है। हमारा धर्म हमे लकीरका फकीर बनना कभी नही सिखाता वह तो हमे युगधर्ममे विश्वास दिलाता है और युगधर्ममे नवीन सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाओके समावेशकी पूरी स्वतंत्रता देता है। आजका हिंदू धर्म या जिस हिन्दू धर्मकी मध्यकालमे व्यवस्था हुई वह आरंभिक युगके हिंदू धर्मसे लाखो कोस दूर है।

वैदिक आर्य स्वभावसे आशावादी थे। रूखी सूखी और उच्छृंखलतासे सतप्त अपनी मातृभूमिकी कल्पना उन्हे विशेष रुचिकर न थी। वे अपनी मातृभूमिका दर्शन उस सांस्कृतिक युगमे करना चाहते थे, जब भूमि सुवर्णका परिधान पहन कर सबकी आँखोमे चकाचौंध डाल देती थी। “हे मातृभूमि तुम हिरण्यके सदर्शनसे हमारे सामने प्रकट हो। तुम्हारी हिरण्यी प्ररोचनाको हम देखना चाहते है—**सानो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि,** [१८]।” इतिहासके स्वर्णयुगकी पुनरावृत्तिकी किसे आकांक्षा नही होती। हमारे वैदिक आर्य तो अपनी मातृभूमिपर सर्वदा सुवर्ण युग देखना चाहते थे।

मातृभूमिका हृदय जाननेके लिए हमें उसके पीछे चलना पड़ता है, अगर हम उसके पीछे पीछे न चले तो वह छोड़ती हुई बहुत दूर आगे बढ जाती है और काल क्रममे हम उसे बिलकूल भूल जाते है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि जब जब हम अपनी मातृभूमिको स्थूल अर्थमें कामधेनु मानकर केवल उसका दोहन करते रहे, तब तब हमने अपनी स्वतंत्रता खोयी। जब हम अपनी मातृभूमिके पीछे पीछे

चलते रहते हैं, तो हम उसकी पुष्ट भावनाओंको और पुष्ट कर सकते है और उसकी अमूर्त्त भावनाओको मूर्त्त रूप देनेमे सफल हो सकते हैं। इसी विचारको लेकर पृथिवी सूक्त १८ मे कहा है: मातृभूमिके ध्यानी पुत्र उसके पीछे पीछे चलते है—**यां माया-भिरन्वचरन्मनीषिणः**। अभाग्यवश देशप्रेमका यह महान मन्त्र गुप्त-कालके बाद उठ सा गया। **आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभिः**—'यथार्थ आर्यावर्तका म्लेच्छोके विनाशके बाद मैने पुन सृजन किया' [वीशल देव, ११ वी शताब्दी] मे उस देशप्रेमकी गूँज तो उठती है, जिसके वश होकर हूणोसे रक्षा पानेसे लिए सम्राट स्कंदगुप्त अपने सैनिकोके साथ भूमिपर सोये, पर उसमें वह तेज नही है, जो इस देशको गुलामीकी जंजीरोमें जकडनेसे बचा सकता था। हम पुन. अपनी मातृभूमिके पीछे पीछे चलनेका प्रयत्नकर रहे हैं—फल स्पष्ट है।

ऊपर हम मातृभूमिके उस रूपका वर्णन कर आये है जो मनीषियोके मननके लिए था। भूमिका साधारण जन उस तह तक नही पहुँच सकता था। ऐसे लोगोकी जिनकी सख्या देशके इतिहासके सब कालोमे न॰ अधिक रही है गरीब किसान, देशके रक्षक सिपाही और व्यापार करनेवाले बनिये अपनी मातृभूमिके स्थूल-रूपको ही ठीक तरहसे समझ सकते थे। इस जन समुदायका मातृभूमिके प्रति क्या भाव था, इसका बडा ही सुन्दर वर्णन पृथिवीसूक्तके मन्त्रोमे है। उनको पृथिवीके कोने कोनेमे रमणीयताका राज दिखलाई देता था—**आशामाशां रण्याम्** [४३]। उस सौन्दर्यके अवलोकनमे जन समुदायकी आखे नहीं थकती। कविकी प्रार्थना है कि भूमिके स्थूल रूपकी श्री देखनेकेलिए हमारे नेत्रोका तेज सौ बरस बढता रहे और उसके लिए हमें सूर्यकी मित्रता प्राप्त हो। लेकिन देशकी प्राकृतिक शोभा हम बैठे बैठे नही देख सकते, उसके लिए सचरणशीलताकी आवश्यकता है [३१]। इस सचरणशीलतासे ही देशके कोने कोने हमारे लिए खुल जाते है और यात्राके ही बलसे देशमे जनायन पंथो, शकट मार्गों और रथवर्त्मोंके जाल बिछ जाते है—**ये ते पन्था बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे** [४७]। भूप्रतिष्ठाके लिए सडके जिनपर रथ दौड सके और बैलगाडिया चल सके, बहुत ही आवश्यक हैं, और इसीलिए कविने अपनी मातृभूमिपर छोटे बडे जनपथोकी कल्पनाकी है।

भूमिपर स्थित उन्नत प्रदेश, निरतर बहनेवाली जल धाराएं और हरे-भरे समतल मैदान—**यस्यां उद्वतः प्रवतः समंबहु,** [२]—जनके लिए अतीव आकर्षणके साधन है, क्योकि साधारण मनुष्य इनके सपर्कमे सर्वदा आता रहता है और अपने पर्वतो, नदियो, और मैदानोकी नित्य प्रति बदलती हुई शोभाको देखकर अपनी जन्मभूमि को और अधिक प्यार करता है। अपने मातृभूमिकी धूल उसे प्यारी है, क्योकि वह जानता है कि पहाडो और पाशुके पारस्परिक सहयोगसे ही इस भूमिकी सस्थिति है

—भूमिः संभृता धृता [२६]। वह अपने देशकी भूरी, लाल और काली मिट्टियो में पृथिवीका विश्व रूप देखता है—बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिम् [११]। क्योकि उसे भली भाँति विदित है कि इन्हीं मिट्टियोसे हमे खानेके लिए अन्न और फल और रोगोके लिए औषधियाँ मिलती हैं।

हमारे देशकी कृषि संपत्तिका मुख्य आधार वर्षा है, अगर बरसात ठीक समय पर न गिरी तो अकाल अवश्यंभावी है। पृथिवीसूक्तमे वर्षाके अग्रिम दूत मातरिश्वा पवनका स्वागत बड़े ओजस्वी शब्दोमें किया गया है। कवि वर्षाके पूर्व धूलसे भरे और वृक्षोको उखाड फेकने वाले अधड़का स्वागत करता है, और नीचे ऊपर चलनेवाले बवंडरके बीच कौंधती हुई बिजलिया [५१] उसे आनेवाली कृषि समृद्धिकी याद दिलाती हैं। उमडते हुए मेघोको देखकर उसे विश्वास होता है कि पृथिवी अब वर्षासे आप्लावित हो जावेगी—वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता [५२]। उसकी समृद्धि वर्षाके उमड़ते हुए बादलोपर इतनी अवलंबित है कि वह मेघको पिता [१२] और भूमिको पर्जन्यपत्नी [४२] कहके संबोधन करता है। मेघोंका स्मरण करते हुए कविको जलके अजस्र स्रोत नदियो और समुद्रोका ध्यान आजाता है क्योकि उसको पता है कि अन्न से लहलहाते खेत बहनेवाले जल और महासागर इन तीनोमें बडा ही घनिष्ठ संबंध है —यस्यां समुद्र उत सिंधुरापोयस्यामन्नम् कृष्टयः संबभूवुः [३]—क्योंकि एक के बिना दूसरेकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

देशमे बहती हुई नदियोसे भारतीय-जीवन और संस्कृतिका इतना निकटतर संबंध रहा है कि नदियाँ हमारे लिए देवियाँ होगयी हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हमारी सभ्यता नदियोके काठोंमे फूली फली। इन नदियोका ध्यान करते हुए कवि अनायास कह उठता है —

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयोदुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

'जिस पृथिवीपर गतिशील व्यापक जन दिनरात बिना प्रमादके बह रहे हैं, वह भूमि उन अनेक धाराओको हमारे लिए दूधमें परिणित करे, हमें वर्चसूसे सीचे।' सच है, लहलहाते हुए अन्नमे जो रस है उसका कारण जल ही है। आजदिन भी पजाब, सिंध और युक्तप्रांतके लहलहाते खेतोंकी श्री नदियोका जल है। इस देशके वासियोके लिए नदीका पानी दूध क्या अमृत है। अगर हमारे पास यह पूँजी न होती तो देशका अधिक भाग रेगिस्तान होता।

भूमिकी समृद्धि बहुत कुछ कृषिपर आश्रित है, पर वन सपत्तिको भी देशको बहुत बड़ी आवश्यकता रहती है। पृथिवी सूक्तमें कृषि-संपत्ति और वन-संपत्ति वनस्पति-

जगत्के ये दो बडे विभाग किये गये है। एक ओर तो पृथिवीके बलिष्ठ पुत्र व्रीहि यव इत्यादि उत्पन्न करते है [४२], और दूसरी ओर घनघोर जंगल है जिनमें अनेक वीर्यवती औषधियाँ हमारा स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिए उत्पन्न होती हैं [२]। वृक्ष और वनस्पति ध्रुव भावसे इस पृथिवीपर खडे हैं [२७] और अनेक सुरभित पुष्प हमारी मातृभूमिका वक्षस्थल ढके रहते हैं। पुष्करिणियोमे खिले हुए कमलोकी गंधमे तो पृथिवी पुत्र अपनी धरतीकी गंध पाता है। वह कहता है—हे भूमि, तुम्हारी जो गंध कमलमे बसी हुई है—**यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश** [२४]–उस सुगन्धसे मुझे सुरभित करो।

अपनी भूमिका ध्यान करते हुए कवि अपने यहाके पशु-पक्षियो तकको नहीं भूला है। आकाशमे उडती हुई हंसमालाएँ और बहुत ऊंचे उडनेवाले सुपर्ण उसे आनंदित करते है—**यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि** [५१]। वह अपने देशके पशुधन—गाय घोडोका स्मरण करता है [५]। इतना ही नहीं, यह पृथिवी वनचारी पशुओकेलिए भी खुली है और सिह व्याघ्र आदि हिस्र-पशु यहा शौर्य पराक्रमके उपमान बने है [४९]। कहाँतक कहा जाय विषैले सर्प और और बिच्छू भी पृथ्वी-पुत्र माने गये है और उनके जीवनसे भी कवि कल्याणकी कामना करता है।

पृथिवी हमारे प्राचीन साहित्यमे सब निधियो और रत्नोकी खान मानी गयी है। इसीलिए उसके पर्यायवाची रत्नगर्भा, रत्नप्रसू, रत्नधात्री वसुंधरा इत्यादि हैं। हिरण्यवक्षा भूमिको सबोधन करते हुए कवि कहता है—'हे विश्वम्भरा, वसुधानी, हिरण्मयी पृथिवी तुम अपने ऊपर बसे हुए ससारकी स्थितिका कारण हो [४४]। तुम्हारे गूढ प्रदेशोमे अनेक निधियाँ भरी पडी है, तुम रत्न और सुवर्णकी देनेवाली हो [४५]। तुम्हारी कृपासे राष्ट्रके कोष भरे रहें।'

सूत्रकार इस पृथिवीपर नाचते-गाते, खेलते-कूदते जनसमाजका भी ध्यान रखता है, और उनके खेल-कूदमे एक विलक्षण आत्मतुष्टिका अनुभव करता है—'जिस पृथिवी पर जनसमुदाय नाचता है, गाता है—**यस्यां नृत्यंति गायन्ति व्यैलवाः**—और जय दुंदुभी बजाता हुआ युद्ध करता है, ऐसी मेरी पृथिवी शत्रुओसे मेरी रक्षा करे।'

भूमिकी वन्दना करते हुए कवि अपने पुरखोकी उस अमर कीर्तिको भी नहीं भूलता जिससे अनुप्राणित होकर पृथिवी माताका यश बढा—'हे पृथिवी, तुम हमारे पूर्वजोंकी भी माता हो। तुम्हारी गोदमे जन्म लेकर पूर्वजनोने अनेक विक्रमके कार्य किये है—**यस्यां पूर्वेजना विचक्रिरे** [५]। सत्य ही है, पूर्वजोके पराक्रमकी कथाओसे ही, चाहे वह दैहिक हो या भौतिक इतिहासका निर्माण होता है, और उन्हींसे उत्साहित होकर हम आगे बढते हैं।

अथर्ववेदका आर्य पुरुष अपनी जन्मभूमिकी प्रशंसा करते हुए कभी अघाता नहीं, क्योकि उसे इस बातका विश्वास था कि उसकी बाह्य और आभ्यन्तरिक विभूतियो की जननी उसकी जमीन है। उसका दृढ विश्वास था कि अपनी जन्मभूमिको सामने रखकर ही हम फल-फूल सकते है। इसीलिये वह कहता है—'पृथिवीपर जो ग्राम और अरण्य हैं, जो सभाएँ और समितियाँ हैं, जो सार्वजनिक सम्मेलन हैं, उनमें हे भूमि, हम तुम्हारे लिए सुंदर भाषण करे [५६]।'

लेकिन पृथिवी केवल प्रशंसाओसे ही नही टिक सकती उसके लिए तप, यज्ञ, दीक्षा, सत्य और ब्रह्मकी आराधना आवश्यक है [१]। पृथिवीपुत्रोका सत्य थोथा नही होना चाहिए उसे तो बृहत् और उग्र होनेकी आवश्यकता है। उनका तप केवल घर-द्वार छोड़कर धूनी रमानेमे नही है, वह तो उन क्रियाशील मानसिक भावोका एकीकरण है जिनके बलपर सस्कृति फलती फूलती है। पृथिवीके धारणकेलिए केवल यज्ञकुंडमे आहुतियाँ डालना ही बस नही है, उसकेलिए तो प्राणोकी आहुतियाँ भी देनी पडती है।

आजदिन हम ब्राह्मणोके सिरपर इस देशके सर्वागीण ह्रासके कलंकका टीका लगाते है और कुछ अशोमे यह वात सच भी है, पर यजुर्वेदके कालमें ब्राह्मण अपने देश और जातिका हृदयसे कल्याण चाहता था। यजुवेदके आब्रह्मन् सूक्त [२२। २२] मे देश और जनके प्रति ब्राह्मणोकी विशद मंगल-कामना निहित है। यज्ञके अनंतर आशीर्वचन देते हुए ब्राह्मण कहता है

> "हे ब्रह्मन्, इस देशमें ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस हो। इस राष्ट्रमे राजन्य, शूर तथा महारथियोका जन्म हो। दूध देनेवाली गाये, बलवान् वृषभ, वायुकी गतिसे भागनेवाले घोडे तथा साध्वी और वीरप्रसू महिलाएँ हो। सभेय युवक हों तथा रथपर चढकर लडनेवाले वीर इस देशमें पैदा हो। समय समय पर पर्जन्य हमें वर्षादान करें। फलवती ओषधिया इस देशमे पैदा हो। योगक्षेमसे हमारा कल्याण हो।"

२

महाभारत कालमे आर्य सभ्यताका उत्तर भारतमे प्रसार होचुका था। इस काल में क्षत्रिय राजे आपसमे लडते भिड़ते तो रहते थे, पर जहाँ तक देशका सबन्ध है उसकी एकता और महानतामे सभी विश्वास रखतेथे। महाभारतमे पांडवोके दिग्विजयका वर्णन सभापर्वमे आया है। इन दिग्विजयोके भौगोलिक वर्णनका आधार महाभारतके आदिकालके बादका है, पर इससे यह तो पता चल ही जाता है कि प्राचीन भारतमें एकछत्र साम्राज्यकी कल्पनाके पीछे देशप्रेम और एकताकी भावनाएँ थी। चक्रवर्त्तियोंके दिग्विजय छोटे छोटे राजाओको समय समय पर इस बातका सकेत देते थे कि भारतवर्ष

एक है और छोटे छोटे राज्योमें विभाजित होकर भी उसे केन्द्रकी एक संगठित शक्तिके आधीन देशके चरम कल्याणके लिए रहना होगा। दिग्विजयके अनंतर युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया जिसमें योगदान देनेकेलिए तथा देशकी सास्कृतिक एकताका प्रदर्शन करनेके लिए पूर्वी अफगानिस्तानसे लेकर बंगाल और सुदूर दक्षिण तकके गणतंत्र और राजे आये। इस प्रकरणमे देशकी पैदावार और कला कौशलोका भी बडा सजीव वर्णन है, जिससे पता चलता है कि देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक व्यापारिक और आर्थिक सबन्ध था, जो देशकी एकताका एक प्रधान लक्षण है। राजसूय यज्ञमे उपायन स्वरूप कंबोजसे (आधुनिक ताजिक प्रजातंत्र) घोडे, ऊनी वस्त्र, सुनहरे काम किये हुए समूर और चमडे, कार्पासिक (आधुनिक काफिरस्तान) से सुंदर दासियॉ, भरूत्रसे गंधारके घोडे, सिंधके पार बलूचिस्तानसे, जिसमे वैरामक, पारद, बंग, कितव इत्यादि जनसमूह बसते थे, बकरे, गाय, ऊंट, खच्चर, फलोकी शराब, शाल, और नम्दे प्राग्ज्योतिप (आधुनिक आसाम) से घोडे, अश्मसार (सगयशब) के बने पात्र तथा हाथी दातकी मूठोवाली तलवारे, द्वक्ष्य (बदख्शा) एक पाद (शायद कच्छ) और ललाटाक्ष (आधुनिक लद्दाक्ष) से सुवर्ण और घोडे, चीन, हूण, ओड्र (स्वातके एक प्रदेशका प्राचीन नाम), वृष्णि, हारहूर (हिरात), हैमवत (हिंदूकुश) से काली गर्दनवाले खच्चर, चीन, और वाह्लीक (आधुनिक बल्ख) से ठीक नापके खुशरग और मुलायम कपडे, ऊनीवस्त्र; रंकु (पामीर) के बने पश्मीने, नमदे (कुट्टी कृत), मेमनोकी खालें, सीमाप्रात (अपरात) से अच्छे शस्त्र, पूर्वभारतसे बहुमूल्य आसन, यान, सुवर्णरत्न तथा हाथी-दातके कामवाली शय्याएं, नाराच और अर्धनाराच नामके बाण, हाथीकी झूलें, जरफशानदी (शीतोदा) के प्रदेशोसे पिपीलिक स्वर्ण, हिमालयकी पूर्वीढाल तथा वारिष (बारिसाल) के किरात देशसे चमडे, रत्न, सुवर्ण, चंदन, अगरु और कालीर, वंग, कलिग, ताम्रलिप्ति तथा पुंड्रसे दुकूल, कौशिक, पत्रोर्ण, और प्रावार (चादर), तथा सिहलसे मोती, समुद्रसार, वैडूर्य, शंख और हाथीके रगीन झूल, आये।

रामायणमें भारतवर्षके प्रति उत्कट प्रेमका सदेश—**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी**'—के महामंत्रसे मिलता है। कौरव भारतको प्राणसे अधिक प्यार करते थे। महाभारत कालमे उनकी अवस्था हीन होचली थी, फिर भी जब पाडवोसे राज्यके बॅटवारेकी बात आई, जिसके फलस्वरूप महाभारतका सर्वनाशकारी युद्ध टल सकता था, तब कृष्णसे दुर्योधनने कहा–'**सूच्याग्रं न दद्यामि विना युद्धेन केशव**–' अर्थात् बिना युद्धके मै सूईकी नोक बराबर भी जमीन पाडवोको नहीं देसकता।

भीष्म पर्वके आरभमे भारत वंदना भावोकी दृष्टिसे अत्यंत उत्कृष्ट है। भुवनकोष अर्थात् भारतवर्षके भौगोलिक वर्णनकी यह काव्यमयी भूमिका है जिसमे—'**प्रियं भारत भारतम्**'—दुहराकर कवि भारतके प्रति अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करता है। संजय धृतराष्ट्रको संबोधन करके कहते है:

"हे भारत, अब मै भारतवर्षकी कीर्तिका बखान करूँगा। यह भारतवर्ष देवराज इंद्रका प्यारा है, मनु वैवस्वतने इसे अपनाया। आदिराज वैन्य पृथु महात्मा इक्ष्वाकु, ययाति, अवरीष, माधाता, नहुष, मुचकुंद, औशीनर शिवि ऋषभ ऐल, नृग, महात्मा कुशिक और गाधि, सोमक और दुर्द्धर्ष दिलीप, ऐसे अनेक बलशाली क्षत्रियोने जिस भूमिको प्यार किया है और सब जन भी जिसको प्यार करते हैं, उस भारतका वर्णन मैं तुमसे करता हूँ।"

इस देश वंदनामे जिन राजर्षियोके नाम आये हैं, उन्होने अपने अतुलित बल और कीर्तिसे इस देशका मान बढाया। वे अकारण इस भूमिको प्यार करनेवाले न थे, वे जानते थे कि उनकी मातृभूमि ही इस संस्कृति और शौर्यकी जननी है जिनसे देश आगे कदम उठाता है। इन चक्रवर्तियोंके रथके चक्के भूमिसे सान्निध्य पानेके लिए कठिनाइयोकी परवाह न करते हुए अप्रतिहत भावसे देशमे दौडे। चक्रवर्तियोकी विजयका एक मात्र उद्देश्य अजान जगहोमे आर्य सभ्यताका प्रसार करके भूमिका गौरव बढाना था और वे अपने इस उद्देश्यमें पूर्णत सफल हुए। वे पृथिवी-पुत्र थे और उन्होने अपनी माताका गौरव बढाया।

भारतवर्षके पौराणिकयुगमें भी जब भारतीय सभ्यता अपने पूर्ण विकासको पहुँच चुकी थी और भारतीय बुद्धि सभ्यताके बाह्य प्रतीकोपर उतना ध्यान न देकर आध्यात्मिक विचारधाराओकी ओर विशेष खिच चुकी थी, लोग अपने प्यारे देशको न भुलासके। देश-प्रेमसे अभिभूत होकर भारतीयोने अपने देशको स्वर्गसे भी ऊंचा स्थान दिया। विष्णु पुराण [२।३।२४] मे इस देश प्रेमकी भावनाका बडा ही सुन्दर वर्णन है। पुराणकार कहता है, "सुना है कि देवता भी यह गीत स्वर्गमें गाते हैं—धन्य है वे लोग जो भारत-भूमिमें उत्पन्न हुए है। वह भूमि स्वर्गसे भी विशिष्ट है, क्योकि वहाँ स्वर्ग और मोक्ष दोनोंकी साधना की जा सकती है। जो देवत्व भोग सकते हैं, वे मोक्षकेलिए पुन. भारतवर्षमें जन्म लेते हैं, जहॉके आदर्श अपवर्गकी प्राप्तिमें कारणभूत हैं।"

३

ऊपर हम प्राचीन भारतमें देशप्रेमकी व्याख्या करचुके हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि देशका नामकरण कबसे हुआ। भरत और भारतके अविच्छिन्न सबंधके मूलका पता हमे ऋग्वेदिक कालसे मिलता है। ऋग्वेदमें भरत आर्योंकी एक प्राचीन शाखा थी जो सरस्वती और दृषद्वती नदियोके बीच बसी हुई थी। भरतो द्वारा पूजित होनेसे अग्निका एक नाम भारत पडा और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीका नाम भारती पडा। लगता यह है कि जैसे जैसे 'भारत अग्नि' और 'भारती देवी' देशके भागोमें फैलती गयी, वैसे वैसे वे प्रदेश भारतके नामसे जाने जाने लगे और कालान्तरमें सारे देशके लिए भारत नाम रूढ़ हो गया।

ब्राह्मणयुगमें कुरु-पंचालके क्षत्रियोमें भरत जनका सन्निवेश होगया, लेकिन साथ ही साथ, जैसा पाणिनिकी अष्टाध्यायीसे विदित होता है, प्राच्य भरत नामका एक

जनपद उस युगमें भी प्राचीन भरतका एक अवशेष बचरहा था। ब्राह्मणयुगमें भारत नामकी उत्पत्तिका आधार दौष्यंति भरतको माना गया है। इन्होंने अठहत्तर अश्वमेध यमुनाके तटपर और पचपन गंगाके तटपर किये। ऐतरेय ब्राह्मण [८।२३] के अनुसार इस देशके किसी राजाने इतने यज्ञ नहीं किये। राजनीतिमें वह सबसे कुशल था और उसके पहले और बादके किसी राजाने अपने कामोंसे इतना यश नहीं पाया। भरतके बढते हुए प्रतापकी महिमाका वर्णन शतपथ ब्राह्मण (१३।५।३।१३) में भी आया है। इसके अनुसार सब पृथिवी को जीत कर—**विजित्य पृथिवीं सर्वाम्**—इन्द्रके लिए भरतने बहुतसे अश्वमेध यज्ञ किये। जान पडता है कि प्रतापी भरत दौष्यंतिके अभूत पूर्व पराक्रम भारतीय जनताको इतने अच्छे लगे कि उसने अपने सबसे पराक्रमी राजाकी यादगार बनाये रखनेके लिए देशका नाम ही भारत रख दिया। जो भी हो इतना तो निश्चय है कि महाभारतके युगमें भरत राजा और देशवाची भारतका संबंध निश्चित हो चुका था।

पौराणिक युगमें इस देशके लिए भारत शब्द रूढि हो चुका था। वायु-पुराण (४५।७५) में भारत वर्षका विस्तार समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिण कहा गया है। इसी पुराणमें गंगाके प्रभवस्थान हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक फैले देशको भारतके अन्तर्गत माना है—**आयतो ह्याकुमारिभ्यादागंगा प्रभवाच्चवै**।

भारतके दूसरे नाम मनुके धर्मशास्त्र और पतंजलिके महाभाष्यमें मध्यदेश और आर्यावर्त आये हैं। इन नामोंकी परंपरा लौकिक संस्कृत और काव्य साहित्यमें बराबर चलती रही, लेकिन इन शब्दोंका व्यवहार समस्त देशके लिए न होकर गंगा-यमुनाकी अंतर्वेदीके लिए ही रहा। अमरकोशमें साफ साफ कहा गया है, पुण्यभूमि आर्यावर्तकी सीमा हिमालय और विंध्यके बीचकी भूमि है। आर्यावर्त भारतीय संस्कृतिमें अग्रणी था, लगता है इसीलिए मनुने मध्य-देश केलिए बडी श्रद्धा दिखलायी है। गुप्त-कालमें तो आर्यावर्तकी महिमा देशके बाहर भी गायी जानेलगी। काश्मीर राज्यके गिलगिट स्थानसे प्राप्त प्राचीन विनय-पिटककी हस्तलिखित प्रतिमें मध्यदेशके प्रति सुंदर विचार प्रकट किये गये हैं। मध्य देशका एक विद्यार्थी पढनेकेलिए दक्षिणापथमें गया। वहाँ छुट्टीके दिन विद्यार्थियोंमें कौन कहाँसे आया है, इस पर चर्चा चल पडी। विद्यार्थीने कहा, "मैं मध्य देशसे आयाहूँ।" इसपर उसके साथियोंने कहा, "सब देश तो देखे-सुने हैं, पर मध्यदेश नहीं देखा। हे माणव कैसा वह मध्य-देश है।" उसने उत्तर दिया—"हे मित्रो! मध्य-देश सब देशोंका अगुआ है वह ईख, धान, गाय और भैंसोंसे भरा-पूरा है। वहाँ सैकडों भिक्षुओंके संघ घूमते रहते हैं। वहाँ दस्युजनोंका पता नहीं है। वह देश आर्य-जनों तथा विद्वानोंका घर है। वहाँ पुण्या, मंगलकारिणी, पवित्र पावनी गंगा अपने दोनों कूलोंको सींचती हुई बहती है। वहां अष्टावक्र ऋषि सब ऋषियोंमें अग्रणी हुए हैं। वह मध्य-देश ऐसा है जहाँ तपस्याके बलसे ऋषिगण सदेह स्वर्ग प्राप्त कर लेना चाहते थे।"

देशके नामकरणकी एक दूसरी धारा ऋग्वेदीय सिधु शब्द है। ऋग्वेदमें सिंधु शब्द उस महान नदीके लिए व्यवहारमे लाया गया है जो भारतके उत्तर पश्चिमी क्षेत्रमे बहती है। सिंधके इस पारके देश तो भारतकी सीमाके अदर हैं ही, सिधुके उस पार का काठा जिसे महाभारतमें परिसिधु सज्ञा दी गयी है और जहाँका पानी ढलकर सिधु नदीमें आता है, भारतवर्षके भूगोलका एक अग माना जाता था। पूर्वी अफगानिस्तान, बदख्शाँ, बलख, ताजिकिस्तान (कंबोज) तथा बलूचिस्तानके कुछ हिस्से, महाभारतमें, भारतके भौगोलिक विस्तारके एक अग माने जाते थे। भारत और इन परिसिधु देशोंका सबंध ईसाकी १० वी शताब्दी तक बना रहा।

हिंदू शब्द सिधु शब्दसे मुसलमानोके आनेके बाद नहीं बना। हिंदू शब्दका प्रयोग तो ई पू. छट्ठी शताब्दीमे ईरानके बादशाह दाराने सूसाके एक अभिलेखमे हुआ है। इस लेखमे कहा गया है सूसाके महलमे पच्चीकारीके लिए हाथी दात हिन्दू देशसे आया। दाराके अन्य लेखोमें हिंदुष (स –सिधु) और हिंदुविआ (स –सिधुव्य) अर्थात् सिधु देशके रहनेवाले, शब्द आये हैं। पाणिनि और महाभारतके भौगोलिक अवतरणो से यह पता चलता है कि सिधु एक जनपद भी था जिसका विस्तार आधुनिक सिध–सागर दोआबमे था, इसकी आधुनिक सिधसे तुलना करनी भूल होगी क्यो कि आधुनिक सिधका प्राचीन नाम सौवीर था। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले सिधु शब्द एक विशेष जनपदके लिए प्रयोगमे आता था लेकिन उसके रूपातर हिदुसे विदेशो मे सारे भारतका बोध होता था।

सिधु-हिदु समीकरणके आधारपर प्राचीन यूनानियोने इस देशका इंडोस नामकरण किया और इसी परंपरासे निकल कर भारतवर्षके हिन्दोस्तान, इंडिया नाम प्रसिद्ध हुए।

इन नामोके सबंधमें एक विचारणीय बात यह है कि भारतीयोंने तो अपनी प्राचीन परंपराके अनुसार इस देशका नाम भारत चलाये रक्खा लेकिन विदेशियोने ईरानी नाम हिदुका आश्रय लेकर भारतके नामकरण किये। चीनी सेनापति पन्–योङ् (ई. १२५) ने इस देशका नाम थिन्–तु कहा है। चीनी साहित्यमें इसीको इन्–तु–को भी कहा है जो सिधुका केवल रूपातर मात्र है।

४

हम ऊपर भारतवासियोके देशप्रेमका वर्णन करचुके हैं। यह देशप्रेम साहित्य के सीमित क्षेत्र तकही नहीं रहा। भारतीय कलामे भी इस देशप्रेमकी झलक कहीं कही मिल जाती है। आज हम भारतका सबोधन माताके रूपमे करते हैं, और कलामे भारत वर्षके स्त्री-रूपकी कल्पना बीसवी सदीके राष्ट्रीय अभ्युत्थानकी देन है, लेकिन आजसे करीब दो हजार बरस पहले एक विदेशी कलाकारने भारतवर्षकी कल्पना स्त्री-रूपमे कर ली थी। एशिया माइनरके लंपसकस नामके प्राचीन स्थानमें एक सुंदर चादीकी तश्तरी प्राप्त हुई, जिसका समय ईसाकी पहली अथवा दूसरी शताब्दी है। यह तश्तरी भारत

वासियोंके लिए बड़े महत्त्वकी है, क्योंकि इसपर भारत-माताका चित्र खुदा हुआ है। शिल्पीने भारत-माताकी कल्पना तत्कालीन एक सभ्रात रोमन महिलाके रूपमें की है, परंतु उस स्त्रीकी वेश-भूषा भारतीय है। भारतमाता एक हाथी दांतके बने आसन पर बैठी है। उसके उष्णीषसे दो सींग जैसे निकले हुए है जिनके पोरसे पता चलता है कि उनका तात्पर्य ऊखके टुकडोंसे हो सकता है। भारतमाताका दाहिना हाथ खाली है और बॉये हाथमें धनुष है। उसके दोनों ओर कुछ पशु-पक्षी अंकित हैं जो शुद्ध भारतीय है। भारतीय पशु पक्षियोंका व्यापार रोमके साथ एशिया-माइनरके स्थल मार्गसे होता था और लगता है इसी व्यापारकी ओर कलाकारका संकेत है। भारतमाताके बॉई ओर हिमालयका चकोर पक्षी है और दाहिनी ओर एक सुग्गा। आसनके दोनों ओर बड़े बड़े कुत्ते है जिनकी कीर्ति यूनान तक पहुॅच चुकी थी। कुत्तोंकी यह नस्ल रामायण [आयोध्या कांड ७०।११] के अनुसार कैकय [आधुनिक शाहपुर, झेलम] में होती थी। राजमहलोंमे ये कुत्ते पाले जाते थे, इनके डाढ बड़े होते थे और शरीर पुष्ट। बाघकी तरह इनमें बल होता था। आसनके सामने एक सिंह और तेंदुआ है। इनके रक्षक धोती, उत्तरीय और पगड़ी पहने हुए हैं।

रोममें भारतमाताके चित्रकी कल्पनाका मुख्य उद्देश्य भारतके साथ रोमका व्यापारिक संबंध दिखलाना था। रोमके साथ भारतका व्यापारिक संबंध बढनेके साथ रोमके लोगोंका कुतूहल इस देशके प्रति बढा होगा और उसी कुतूहलकी तृप्तिके साधन स्वरूप उस देशमें भारत संबंधी अनेक कलात्मक चित्र बने होंगे जिनमें लैंपस्कसकी तश्तरी भी एक है। चित्रमें भारतमाताकी परिभाषा अर्थशास्त्रको लेकर की गई है, फिर भी वह एक विशेष सौष्ठवसे पूर्ण है।

गुप्त-कालमें अंतर्वेदीकी पुण्य भूमिका महत्व बढ़ा और उस भूमिकी प्रतीक स्वरूप गंगा हुई। दोनोंके इस पारस्परिक संबंधके आधारपर भेलसाके पास उदयगिरिकी गुफामें एक विलक्षण भौगोलिक चित्रण किया गया है। यह भौगोलिक दृश्य उदयगिरिकी वराहमूर्तिके बगलमें अंकित है। इसमें गंगा यमुना, प्रयागमें उनके संगम और अंतमें उनके समुद्रमें मिलनेके दृश्योंको लेकर मध्यदेशका जीवित रूप खड़ा किया गया है। इस चित्रमें बाईं ओर जमुनाकी और दाहिनी ओर गंगाकी धाराएं हैं। इन दोनों नदियोंकी बीचकी भूमिपर छ. स्त्रियॉ बाजे बजाकर नाचगा रही है जिससे मध्य-देशकी आनंदी जनताके जीवनपर काफी प्रकाश पडता है। एक आकाशचारी देव भी हाथमें माला लिये हुए इस भूमिकी पूजामें तत्पर है। गंगा और यमुनाकी वारिधाराएं तो दिखलायी गयी ही है, लेकिन साथही उन नदियोंका स्त्री रूपमें भी अंकन हुआ है। जल धाराओंमें गंगा और यमुनाकी मूर्तियां क्रमश कच्छप और मकर वाहनों पर खडी हैं। नदियोंके संगमके बाद एक अपार जलराशि दिखलायी गयी है जिसके बीचमें दोनों हाथोंमें पूर्ण कुंभ लिये हुए सुंदर पुरुष मूर्ति खडी है जो स्वयं समुद्रकी प्रतिमा है। इस प्रकार यह चित्र मध्य देशकी भौगोलिक सीमाओंको बड़ेही रोचक ढंगसे हमारे सामने रखता है।

चार कविताएँ

सुमित्रानन्दन पन्त

एक

गूंज उठा नीरव वन !
पतझरके सूनेपनमे
सोया न रह सका जीवन !

शब्दहीन श्यामल वन भीतर
मंजरि रहित सघन आम्रोंपर,
स्तब्ध पवनके उरमे सहसा
जाग उठा नव स्पदन।

चीर—तमिस्र, विषाद, निराशा,
एक पिकी मुखरित कर आशा,
रिक्त डालियोंमे वनकी
करती मधुज्वाला वर्षण।

१९३८]

दो

विरह नही चिर मिलन दिखाता
मुझे तुम्हारा द्वार,
भाव न, सतत रूपमे परिणति
पाता यह संसार।

कहाँ त्याग ? भर देते फिर-फिर
तुम जीवन-भंडार,
सहम रहा वह, तुमसे पा नित
विविध भोग-उपहार।

नश्वरको चिर बना रहे तुम
हे ऐश्वर्यनिधान !
स्वप्न हो रहे सत्य सदासे
पा तुमसे वरदान।

१९३८]

तीन

मिलता है प्रेयसि ! जलमे जल
सदा पवनमे ही पवमान,
उरमे उर, जीवनमे जीवन,
मिलते नित प्राणोंमे प्राण,

और प्रिये, मिलता जलसे जल,
सदा पवनसे ही पवमान,
उरसे उर, जीवनसे जीवन,
मिलते प्राणोंसे ही प्राण।

सुन्दर जग, जीवन भी सुखमय,
सहचर, बन्धु, साज-सामान,
पर तुमसे ही मिलकर होंगे
पूर्ण तृप्त जीवन, मन, प्राण।

१६-२-३२]

चार

दिखाता जब कोई अपनाव,
पुलकसे खिल उठते है प्राण,
तीव्र रे तिरस्कार का भाव
मर्ममे लगता जैसे वाण !

हाय, उर-उरके भेद-दुराव !
खो गया इसमे मनुज-समाज,
व्यर्थ आशङ्का, आत्म-बचाव,
जटिल इनसे जग-जीवन-काज !

उठा उर-उरमे रे दीवार
सहज वन्दी होते हम आप,
देख निज मनका ही तम-भार
मूंद देते आंखे चुपचाप !

सह सकूं मै अवहेला-भाव,
दे सकूं प्राणोके हित प्राण,
भावसे ही रे बढता भाव,
जगत-जीवन आदान-प्रदान !

५-२-३२]

काम और निष्काम *

प्रभाकर माचवे

उपन्यासकी रूपरेखा

मनुष्य और पशुमे सामान्य चार आदिम प्रवृत्तियॉ बहुत बलवान है सेक्स, Self assertion या युद्ध-प्रवृत्ति, भूख और भय या आत्मरक्षा। उन प्रवृत्तियोंसे लडनेमे, व्यक्तिपर समाजकी सुविधाएँ लादनेमे ही गत तीन हजार वर्ष बीत गये है—जिन्हें सभ्यताका इतिहास कहा जाता है। फलत आज मानव एक नकाबपोश बन गया है समाजमे वह एक मुखौरा पहने चलता है, व्यक्तिश उसके हेतु विपरीत हैं। इस कहानीमे चार खडोंमें इन्ही चार प्रवृत्तियोंको मूल मानकर उनके विरुद्ध आदर्शवादकी नकारात्मक शब्दावलीमे (निष्काम, नि शस्त्र, निरन्न, नैरात्मा–जिन्हे राजनीतिक अर्थ देनेका प्रयत्न गॉधीवादके अनासक्ति, अहिसा, उपवास और असहयोगने किया) मानव-मनका सघर्ष प्रस्तुत किया है। लेखक चूकि भौतिकवादकी महत्ता मानता है—यह नकारात्मक आदर्श-मूल्य क्रमश पराजित होते जाते है। इस निराशामेसे निष्क्रियता और गतिरोध पैदा होता है। यही वैयक्तिक और सामाजिक गतिरोध इस कथाकी नीव है।

गतिरोधका परिणाम है, मूल्योंका गडबडा जाना और प्रश्नोंके आर्थिक पहलूपर जोर। कथा जिस चौखटमे चल रही है—पूजीवादी समाज-व्यवस्थाके अविकसित चरणमे—उसका भी कथा-वस्तुपर प्रभाव स्पष्ट है। मुझे खेद है कि चित्रणके आवेशमे कही-कही पात्र व्यगचित्रात्मक बन गये है। यह एक अ निवार्य बुराईके रूपमें ही हुआ है। वैसे पात्रोंकी मानवोचित स्वाभाविकता निबाहनेका मैंने यथासाध्य सतर्कतासे प्रयत्न किया है।

—प्र. मा.

[१]

'अविनाश चक्रवर्ती'

'उपस्थित, महाशय'

'अमिय सेनगुप्त'

'हॉ, श्रीमान,'

'अनीता दे'

'जी'

'चैतन्य चैटर्जी'

'यस सर·'

* लेखकके अप्रकाशित उपन्यास 'बुभुक्षा' का एक अश।

हाजिरी पूरी हुई। अपने मोटे चश्मेमेसे दृष्टिको और भी अधिक स्वप्निल, वृद्ध-स बनाते हुए, स्थूल शरीरको साभिनय अध्यापन-कलाका दंड देते हुए, प्रोफेसरने राजनीति पर अपना वही पुराना राग अलापना शुरू किया। प्रोफेसर कह रहे थे—' तुलना करो रासपुटिनके समयका रूस और हिटलरके उत्थानके पूर्वका जर्मनी '

परतु अविनाशका मन उन बातोमे अधिक देरतक अटका न रह सका। कलकत्ते के उस विख्यात कॉलिजकी दुमंजली कक्षामे जहॉ अविनाश बैठा था, वहॉसे ऊँची खिडकीसे बाहर दूरके ताल-तमाल दीख रहे थे। वर्षाऋतु थी और वृक्षोकी ओट कहीं नीलाभ विस्तारमें पानी भी चमक जाता था। अविनाशका अतर्मन अपने गॉवमे लौट चला वे बचपनके दिन, ठाकुर-दाके पुकूरकी सीढियोपर चोरी-चुपके पढ़ा हुआ वंकिम बाबूका ' कृष्णकातेर वुइल, ' और उसमे नायक, नायिकाके बेहोश होनेपर, कैसे होशमे लाता है शरदबाबूके ' स्वामी ' मे वह फूल तोड़नेका प्रसग .' सन्यासी उपगुप्त ' —रविबाबूकी वसतसेना छि , साहित्यका यह रईसी विलाससे भरा जर्जर अग—श्रृंगार और अनन्त-यौवना उर्वशी (सेसर) कानोमे प्रोफेसरकी आवाजकी भनक—'सूडेटन जर्मनोका चेकोस्लोवाकियामे दावा ' पथका दावा, दावेदार नहीं—दावा—आमि दावानल दाह, दाहनकरिया विश्व आमि जहन्नुमेर आगुने बशिया हाशी पुष्पेर हाशी—पुष्पा (पुन अतर्चेतनाका अबाधित प्रवाह) पुष्पा या शमा ? या हेम गॉवकी बचपनकी साथिने, खेल, एकत्र अध्ययन. पुष्पा शरीर थी हेम आत्मा परतु केशभूषा शमा की ही अच्छी थी, परतु हेमकी सॉवली मुद्रामे वे रसभीनी ऑखे, मंत्र-मुग्ध कर डालने-वाले कामरूपके तात्रिकका अज्ञात जादू उनमे बसा हो अब भी स्पष्ट याद है, वह बडी-बडी ऑखोसे ढुलक पड़नेवाले ऑसू और सच भी तो था, उसकी माको मुझे इस तरह डॉटना क्यो चाहिये था, उसे क्यो न बुरा लगा होगा, क्या मैने कोई पाप किया था ? पाप (सतर्क) देखें, अरविद घोष पापके सबंधमे क्या कहते है ! सामने रखी हुई अरविदकी पुस्तक पढने लगता है।

राजनीतिके प्रोफेसर मिन्ना रहे है—'राजनीतिका अर्थशास्त्रसे चूँकि बहुत निकटतम सबंध है, जर्मनीने अपने राइश्टैगके विकासमे आर्थिक नीति-निर्धारणको प्रमुख कार्यक्रम बनाकर डा.शाख्ट '

अविनाश फिर सोचने लगा—अर्थशास्त्र ? छि अर्थशास्त्र यदि पैसा होता ही नहीं ? गॉधी, क्रोपाटकिन बाकुनिन—ठीक ही तो है आदमी-आदमीका रिश्ता सीधा हो—उसमे पैसेकी ओट क्यो जरूरी है ? परतु, परतु (अतर्मन) यह सामने खिडकीसे जो टेनिस-लॉन दिखाई दे रहा है उसपर यह उद्धत रथीन बराबर खेले ही जा रहा है; ' मिक्स्ड डबल्स ', वह ईसाई लडकी नई ही फॅसी है, शायद थक गई है...हॉ, दोनो जाकर उत्तेजक पेय पियेगे, परंतु यह अनीताके बंगलेके आसपास भी तो बहुत चक्कर काटता था लोफर है. अनीता ? रूप गर्विता, बोर्ज़ुआ...इन्हें तो अपने नृत्य-गीतसे ही

फुरसत नही है। इन्हे क्या पता है कि अग्रगामी दल क्या है, कृषक प्रजापार्टी क्या है, जुगान्तर क्या है ? ऐसी लड़कियोने ही देशका दामन दागोसे भर दिया है. और लडके भी क्यो नही, मसलन ये अमिय है—आर्टिस्ट बनते है साहब आर्ट क्या ? मनका धोखा है फ्रायडने इसे कुछ प्रवृत्तियोका स्थानातरीकरण (डिस्प्लेसमेट) बतलाया है। परतु फ्रायड पक्ष-सत्य है। शायद सत्य स्वयम् एक पक्ष-सत्य है, उस विराट घटनाका जिसे 'ऐतिहासिक अनिवार्यता' कहकर परसो वह कामरेड कह रहा था। - काम खूब करता है वह कामरेड। परतु उनकी दृष्टि स्थूल भौतिकवाद यानी इंद्रिय परायणता . यानी—(सेंसर) परतु, गाधी 'आत्म सयमनको ही स्वराज्य' मानते है, और अरविंद घोष और काली भैया.

प्रोफेसर आगे कह रहे हैं—'दुनियामे प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी शक्तियोका संघर्ष चला है। क्षण-कालके लिये अँधेरा प्रकाशपर विजय पाता-सा दीखता है। परतु अतत: प्रगति ही विजयी होकर रही है जहॉ वैज्ञानिकताके नामपर अधविश्वास, सर्व कल्याणके नामपर वर्गहित, राष्ट्रीयताके नामपर पूँजीवाद पोषण पाता है–उसे फाशिज़्म कहते है। यहॉतक कि ये एक डडेसे सबको हॉकनेवाले, भेड़िया--धसान बढानेके हिमायती, इंसानी जहनको भी खरीद लेना चाहते है। इटलीमे फैशिस्टोके आफीशियल फिलासफर्स. '

अविनाश यहॉ लेक्चरमे ध्यान देने लगा, और इतर साधारण विद्यार्थियोकी भाँति अध्ययनोन्मुख हो गया।

आइये, अविनाश जहॉ रहता है, वहॉ उसका कमरा उसकी अनुपस्थितिमे देख आये (वर्ना वह यदि साथ होगा तो इतनी बाते देखने नहीं देगा)। उससे शायद अविनाशका कुछ अधिक परिचय प्राप्त हो सकेगा। अविनाश कॉलिजके होस्टलमे नहीं रहता यानी रहना चाहकर भी नही रह पाता क्योकि उतना पैसा उसके पास नही है। यह देखिये कमरा खोलते ही आपको उसके जूते दिखायी देंगे—एक जोड़ा चप्पल उसके पैरोमे थी ही–यह दूसरा पक्का जूता है, जो किसी खिलाडीकासा जान पडता है। एक निकर धुली हुई सूख रही है।— एक कोनेमे डंबेल पड़े है, सामने आईना है। वह घरपर व्यायाम जरूर करता होगा। क्योकि ब्रह्मचर्यका उसे व्यसन है। दीवालोपर विवेकानंद, नेपोलियन और शायद ताल्स्तायके फोटो लगे हैं। सामने काठका तख्त सा है जिसपर चटाई बिछी है। कम्बलमे लिपटा मुख़्तसिरसा उसका बिस्तर है। एक गेरुए कपासके खद्दरकी चादर वहॉ अस्त-व्यस्त पडी है। सामने उसके अध्ययनकी टेबुल है। शायद बिस्तरेके नीचे एक टीनकी ट्रंक पडी है, जिसपर बंगालके किसी दूरस्थ अंतर्प्रदेशके ग्रामसे कलकत्ते तकका रेलवेका लगेज–लेबल अभी भी चिपका है।

अविनाशके मनमे झॉकनेके लिये उसके टेवुलकी सामग्री देखना पर्याप्त होगा टेवुलपर सामने एक बडासा मिट्टीके तेलसे जलनेवाला दीया है, बहुत दिनोसे जिसकी कॉचकी चिमनी साफ नहीं हुई है । पास ही एक अधजली मोमबत्ती और दियासलाई । एक फूटे चीनीके कटोरेमे सूखीसी कमलकी दो कलियॉ हैं । और कुछ किताबे हैं, जो भी वहुत अस्तव्यस्त प्रकारकी हैं, काटका 'प्रोलेगैमीना' है, मैजिनीकी आजादी सबंधी किताब है, डीवैलेराका और कमालपाशाका जीवनचरित्र है, गॉधीजीकी अहिसा पर कोई चर्चात्मक पुस्तक है, एल्डूस हकसलेका 'एंड्स एंड मीन्स' है, एक हस्तरेखा विज्ञानकी पुस्तक और अतमे 'शरीरको सुगठित कैसे वनाया जाय?' इसपर एक सस्तीसी किताव है । एकाध वॅगला साप्ताहिक पड़ा है । कुछ कोरे, कुछ अधरँगे कागजात । और सामने जो सफेद स्याहीसोखका लंबा टुकड़ा है, उसपर कई अर्थशून्य आकृतियॉ और ऑकड़े और नाम है । नमूनेके तौरपर एक कोनेमें है

त्रिकोण, वर्तुल, त्रिकोण—एक दूसरेसे जुड़े हुए । फिर |–१ । इसके पीछे तीन उल्टे उद्गार चिन्ह, फिर और जल्दी-जल्दीमे किया हुआ हिसाब:

भोजन १८–०–०	घरसे क्या आया !–०–
सिनेमा ३–०–०	टथूशनसे १२–०–०
पोस्टेज, पुस्तके १०–०–०	लेखोसे १०–०–०
अन्य १–०–०	मित्रोंका ऋण ११–०–०

=भोजन कम करना होगा

आत्म-संयम . आत्मश्रद्धा ही स्वराज्य है। 'मनुष्य आवश्यकताओकी गठरी नहीं है। अर्थशास्त्र अनर्थशास्त्र है'–रस्किन । Matter is indestructible =अविनाश .

शायद, अविनाशका परिचय इतनेसे पर्याप्त होगया होगा ।

कि चार वजे डाकिया एक पत्र घरमे डाल जाता है। पत्र अविनाशके चाचा अर्द्धेन्दुशेखरजीका है । आशय ·

'तुम्हारे परीक्षाके मार्क जाने । तुम फेल हो गये । ऐसी तुमसे उम्मीद नहीं थी । तुम निकम्मे निकले । तुमने कुलकी नाक काट डाली । तुम्हें आइंदा पैसा नहीं भेजा जायगा । चाहे पढो, चाहे भाडमे जाओ ।

'पुनश्च . पडोसके अहीन चौधरीकी लडकी हेम जिसकी पारसाल शादी हुई थी, वह विधवा होगई । विधनाका लेखा !'

कहना नहीं होगा कि अविनाश कॉलिजसे लौटा। उसने पत्र पढ़ा। उसे सदमा लगा। नित्यकी भाति सार्वजनिक वाचनालयमें वह अखवार पढ़ने नहीं गया। उल्टे

गीताके निष्काम कर्मयोग पर वह किसी विद्वान-साधुका भाष्य पढने बैठा। और ऊब गया तब भूखे ही, जेबमें बचे हुए बारह आने गिनकर शहरके किसी दूरस्थित कोनेमें लगा हुआ 'देवदास' फिल्म देखने, अकेले ही गया।

सबेरे जल्दी उठकर एक मीलकी दौड़ लगाते हुए तालाबके पास अविनाश उसी प्रकार प्रसन्न-चित्र अमियसे मिले—जो कि अमूमन बहुत देरसे उठनेवाला शरीफ आदमी आज इतनी जल्दी वहाँ तालाबके किनारे क्यो आगया, और कैसे, यह एक आश्चर्यकी बात थी, जिसका कारण आगे पढिये—

[२]

अमिय कलाकार है। यानी सक्षेपमें, वह सौंदर्य-शोधक है। चित्र वह बनाता है. रवीद्र सगीत अलापनेकी कोशिश कर लेता है, नृत्यसे भी उसे बेहद शौक है, और सुना गया है कि अनीतादेवीकी 'स्टडी' में जो बर्नर्डशाका क्ले-मॉडेल (मिट्टीकी मूरत) है, वह भी उसीकी कुशल उँगलियोसे बना हुआ है। अब शायद कोई ललित कला नहीं बची जिसने अमियकी शरण न ली हो। हॉ, शरण ही कहें, क्योकि वह इन बेचारी कलाओपर अपनी बुद्धिसे जो प्रेम करता था, वह एक प्रकारका अत्याचार ही था।

बची रही कविता। सो उस सबंधमें भी अमियकी कोशिश जारी थी। और सुना जाता था कि वह अत्याधुनिक ढंगकी कुछ ऐसी ही रचनाएँ संपादकोके पास भेज चुका था, जो कि छपनी संभव नही थी (उदाहरणार्थ, उनमें एक पंक्ति लिखकर पूरी काटी गई थी, और रचयिताका आग्रह था कि वह वैसी ही कटी-हुई छपे—यानी पूरी पंक्तिका या तो अलगसे ब्लाक बनाया जाय, या दुबारा छपाई की जाय।)—अत अमियका कवि अप्रकाशित ही रहा था। वर्ना सब कोई जानते थे कि अमिय उच्च-कोटिका कलाकार है, क्योकि अक्सर जो समझमे नहीं आता, उसे ही उच्च कोटिका कहनेका रिवाज कलाके क्षेत्रमें चल पड़ा है।

सो एवंगुण विशिष्ट अमिय सेनगुप्त इतने सबेरे-सबेरे तालावके किनारे आ गये थे उसका कारण स्पष्ट था। वे प्रकृतिके सौंदर्यको रंगोमे बॉधना चाहते थे। वैसे प्राकृतिक दृश्योके अकनसे उन्हें बेहद प्रेम था। कई जगह इसी दृष्टिसे घूम चुके थे और जहॉ जहॉ गये थे, वहॉकी यादको द्रव रगोमें (वॉटर कलरमे)कागजपर उतार लाये थे। हृषीकेशकी गंगामे नावसे जाते हुए उस पारकी पहाडोकी नीली झॉकीकी तस्वीर जैसे उनके पास थी, बंबईके समुद्रके किनारेकी लबी-चौडी रेतकी पीली-गुलाबी रेखाऍ भी उनके स्केचिग-फ्रेममे टॅकी थी। उनका स्केचिग फ्रेम क्या था, संक्षेपमे जो दुनियाका सुंदरतम उन्होंने देखा था, उसके हरे-गुलावीपनको उन्होने उसके अचलमें संवार रखनेका प्रयत्न किया था।

अमिय एक प्रकारसे सौंदर्यवादी कलाकार कहा जा सकता है और ऑस्कर वाइल्ड और वाल्टर पेटरके सौंदर्यवाद सबंधी समर्थन-तर्क उसने न भी पढ़े हो, फिर भी उसका सीधा-साधा नुसखा कलाके मामलेमे यही था

दुनियामे दुख बहुत है, गंदगी बहुत है, सस्तापन बहुत है।

अत कलाके सौंदर्य लोकमे चलो जहाँ सुख ही सुख है, दुख है भी तो वह सुखसे समतुलित है, सब कुछ साफ-सुथरा, मनकी मौजके अनुसार, राजकीय और समृद्ध है।

वहाँ कुछ कमी नहीं है, क्योकि वह स्वप्नलोक है, कलाकारकी 'आत्मा' की हाथी दाँतकी बुर्जोसे सरक्षित 'युटोपिया' है।

अविनाशको इसी बातसे अमियसे चिढ है। अमियके चित्र उसे अच्छे नहीं लगते हो, सो बात नहीं। उसके कई चित्रोमे उसे एक भावी टर्नर और कास्टेबसके दर्शन हुए है। परतु वह कई बार अमियसे इस मामलेमे उलझ पडा है। उसने यह जाननेकी कोशिश की कि अमियके राजनैतिक मत-विश्वास क्या है, पता चला कि अमियके कोई राजनैतिक निश्चित विश्वास नही है। राजनीतिको भी वह प्रकृतिके रगोकी खेलकी भाति एक अस्थिर चंचल चित्रपटी समझता है। वह उस बातमे यानी राजनीतिके सबधमे, गभीर-चित्त नही। उसके लिए राजनीति 'कैलिडीस्कोप' से अधिक अर्थ नहीं रखती। अविनाशको यह बात अच्छी नहीं लगती। इसीलिए अविनाशने अमियको 'बोर्जुआ' कलाकार घोषित कर दिया है।

इस चिढके पीछे केवल राजनैतिक मतान्तरोका ही कारण हो सो नहीं। अनीता, जिसके सबंधमे अविनाशके मनमे एक प्रकारका नकारात्मक आकर्षण यानी वितृष्णा है, उसका निकट साहचर्य (वह 'काया नैकट्यहीन' अथवा प्लैटोनिक भी हो सकता है, ऐसा अविनाशका मन उसे समझाता है) अमियके साथ उसने देखा है। वह उसे कुछ भला नहीं लगा है। बल्कि अखरा ही है।

—कि नित्य मील भर सबेरे दौड़ लगानेके निश्चयको तोड़ते हुए अविनाश वहाँ ठिठका, जहाँ अमिय खडे-खडे अपने चित्रकी चौखटमे जल्दी जल्दी रग भर रहा था।

कुछ देर मौन।

फिर प्रशंसोद्गार—'खूब अमिय, खूब।'

अमियके मुँहपर एक हिकारत भरी हँसी।

अविनाश—'क्यो जी अमिय, ऐसे चित्रोसे देशको फायदा?'

अमिय (उतने ही ठंडे स्वरसे जितना अविनाशका स्वर उत्तेजित है)—'तुम्हारे दर्शनशास्त्रसे देशका फायदा। गीतासे देशका फायदा?'

अविनाश—वह हमारे देशकी सस्कृतिकी लोक-गगा है। वह हमारी परम्पराका परमोज्वल विकास है ।

अमिय—मगर नजरुल और जैनुल (कक्षाके दो विद्यार्थियोकी ओर सकेत) या तो अपने देशवासी नहीं हैं या कि उनके मत तुम्हारे इस मतसे नहीं मिलते। या उन्हें छोडो, कॉलेजका पंचम, चपड़ासी, भंगी, ये सब तुम्हारा मत मानते हैं। कमसे कम ये चित्र देखकर उन सबकी आखे हरी हो जॉयगी। कला विश्व-धर्म है।

अविनाश—हम कहॉ मुसलमानोसे द्वेष करते हैं। हमारा गॉधी तो उनकी लिपि, उनकी कुरान, उनकी अच्छी बातें सीखने, पढने, जज़्ब करनेको कहता है। क्राति-कारियोमे क्या मुसलमान, क्या हिंदू सब एक साथ काम करते थे—पृथ्वीसिंह और मानवेंद्रनाथ राय ही नहीं थे, बरकतुल्ला और अशफाक हुसैन भी तो थे। मुजाहिद्दीनो को क्या तुम भूल गये ?

अमिय—देखो जी आतंकवादियोके रोमाटिक किस्से मेरे सामने न छेडो। मै उनसे रौबमें आनेवाला नहीं हूॅ। मुझे पेंटिंग पूरा करने दो।

अविनाश—हॉ, तुम उन्हें रोमाटिक कहोगे जो अपनी जानपर खेल गये, फॉसी के तख़्तेको जिन्होने विवाह वेदी बनाया, मरण–सुंदरीसे जिन्होने हॅसते-हॅसते वरण किया। तुम्हें तो अपनी अनीताके रोमांससे ही अवकाश कहॉ।

'हिट' तीखा था। वह सीधा जा लगा। अमिय कुछ तमतमा गया। इसके पहले कि वह उत्तर दे—अविनाश अपनी दौडपर आगे निकल गया था।

अमियके मनका कारवॉ चल रहा है· तो बात यहॉ तक पहुॅच गई। यही है अविनाश, बडा आत्म-सयम और नैतिकताकी बातें करता है—दिल कम्बख्तका अनीताकी ईयररिंगोमें झूल रहा है। यह सब नैतिकता एक विराट ढोग है। (उसने सिगरेट जलाकर मुॅहमे रख ली—मानो उसने सब नीति पुस्तकोंको आग लगा दी हो, इस अश्वस्त भावसे) सत्य केवल एक है—रंग और रेखा, वर्ण और विन्यास। हॉ, अजंता भी देखा है—क्या फ्रेस्कोके रग है: शंखश्वेत, अलक्तक, पीत-लोहित, सौराभ, घोरात्व, धूमच्छाय, कपोताश्व, अतसी पुष्पाभ, पाटल, कर्बुर, और क्या-क्या . .. अनीता सुंदर नाचती है, उसने शातिनिकेतनमे इसकी शिक्षा पाई है तो क्या, उसमें अझूरीका उत्साह, सिम्कीकी मुद्राऍ, अना पावलोवाका पदक्रमभंग है...इसाडोरा डंकनने अपनी आत्मकथामे लिखा है कि कैसे-कैसे राजनीति विशारद और ब्रह्मविद्यापटु उसके चरणोकी गतिपर सर्वस्वार्पण करनेपर उद्यत् थे—रूप और अरूपकी चर्चा व्यर्थ है। रूप प्रथम है· क्योकि वह हमारे रक्तमे अमिश्रित रूपमें विद्यमान है...आजके युगकी स्पर्शासक्ति.. और यह रग तो मटियाला हो चला, वह धुँधले कुहरेका आभास कहॉ गया? नृत्य, चित्र और छंद . अमिय सेनगुप्तके जीवनकी यह त्रिभङ्गी है।. .

परंतु इस सारी निर्द्वंद्व कलाराधनाका एक दूसरा पहलू भी है। प्रतिमास बराबर नियमित तारीखपर जमीदारबाबू निखिल सेनगुप्तके घरसे १००) का मनिऑर्डर कॉलेज होस्टेलमे अमियके पास पहुँच जाता है। उसीके बलपर प्रति सप्ताह कमरेकी सजावट बदलती है। फूलोके 'वाज' (Vase) बदलते है। दीवालोपर कभी अमृत शेरागल और कभी गगनेंद्रनाथ ठाकुर और कभी मनीषी देकी तस्वीरे बदलती हैं। और हुक्केमे जब अगार बराबर नही होता, नौकरको डॉटा जाता है, और कभी चोरी-चुपके नौकरकी सिफारिशकी हुई श्यामाके घर भी दौरा हो जाता है। पैसेकी थैली सलामत रहे, ऐसी नयनाभिरामा श्यामाऍ तो हजार पैदा हो जाती हैं। जयदेव और विद्यापतिके, बिहारी और पद्माकरके, मोपासा और रेनाल्ड्सकी सैंकडो मास-मुग्ध रस-सृष्टियोका प्रत्याख्यान हो जाता है।

कला अतत काम है।

'. एक दिन कैलाशकी देवदारु-द्रुम-वेदिकापर निर्वात-निष्कम्प प्रदीपकी भॉति स्थिर भावसे आसीन महादेवके सामने अपने ही यौवन भारसे दबी हुइ वसन्त-पुष्पोकी आभरण-धारिणी पार्वती जब पुष्प-स्तवकके भारसे झुकी हुई संधारिणी पल्लविनी लताकी भॉति उपस्थित हुई थी और अपने नील अलकोमे शोभामान कर्णिकार तथा कानोमें विराजमान नव-किसलय-दलको असावधानीसे विस्रस्त करती हुई उस तपस्वीके पद-प्रान्तमे झुकी थी, तो योगिराज क्षणभरके लिये चंचल हो उठे थे, उन्होंने बरबस अपने विलोचनों को पर्वतीके मयंक-मुखकी ओर व्यापारित किया था, उन्होंने सारे ससारको क्षणभरके लिए मधुमय देखा था—अशोक कंधेपरसे फूट पडा था, नकुल कंटकित होगया था, न इसने सुंदरियोके आशिजित नूपुर--ध्वनिकी प्रतीक्षा की, न किसीने उसके गंडूष-सेककी !....

देवाधिदेव महादेवकी यह मोहाकुलता कला है, जिसने कालिदासके कुमारसंभव की शोभा बढ़ाई है।

और आदम और ईवके पतनपूर्वकी और पतनोत्तरकी यह गरिमामयी कहानी है, जिसने महाप्यूरिटन कवि मिल्टनके स्वर्गके खोने और पानेके महाकाव्योकी वाणीको धार दी है.

'लौटो, सुंदरी ईव, लौटो !

तुम किससे भागी जा रही हो ? उससे, जिससे कि तुम बनी हो। उसके ही मास और अस्थियोंसे निर्मित, तुम्हें अस्तित्व प्रदान करनेके लिए तुम्हारे कक्षमे मैं झुका, तुम्हें पानेका अर्थ था सारपूर्ण, सार्थ जीवन, ओ मेरी आत्माके निजत्त्वके अश मे तुम्हें खोज रहा हूँ, तुम पर मेरा अधिकार है, ओ मेरी अर्द्धांगिनी .

(पतनपूर्व पैरेडाइज लौस्ट, भाग ४. ४८८–४९१ पंक्तियाँ)

और वही पतनोत्तर, जब कि नौवे भागमें (७८०–७८४ पंक्तियोमें)–'यो कहकर, ईव ने उन अभागे क्षणोमें अपने अधीर हाथ बढाये। फल तक वे पहुँचे। फल तोड़ा और उसने चखा। धरित्रीने वह व्रण अनुभव किया और प्रकृतिने अपना अधिष्ठान छोडकर निसास रखा। ऐसे चिन्ह सर्वत्र दीखे कि सर्वस्व जैसे खोगया। अपराधी सर्प झाड़ीमें चुपचाप सरक गया, रेंग गया।' वही आदम पतनोत्तर ईवमे क्या देखने लगा—

'मानो एक नई शरावसे दोनो शरावोर हो, दोनो आनंदके सागरमें तैर रहे हैं और समझते है, कि उनके बीचमे देवत्वके भी पंख फूट रहे हैं, जिससे कि पृथ्वीको न-कुछ माना जाय। किंतु वह मिथ्या फल, पहिलेसे ही कुछ दूसरा दुष्कृत्यआयोजन कर रहा है।

वह मास-लुब्धता, शारीरिक वासना लहका रहा है।

आदम ईवपर आसक्त दृष्टि डालने लगा, ईवने उतनी ही निश्चिततासे वह दृष्टि टुहराकर लौटाई।'

(पंक्तियाँ १००७–१५)

यह भी कला है।

कला नारी है।

नारी वह जो कि रवीद्रनाथकी उर्वशीके समान–'नह कन्या, नह माता, नह वधू हे रूपसी उर्वशी' है, जिसके 'डान हाते विपभाड, सुधापात्र बामकरे,' है। जिसकी मेखलाके स्खलन-मात्रसे लाखो विश्वामित्रोकी तपस्याएँ गड़गडा पडती हैं। नारी वह जो कि,

नारी वह जो कि क्लिओपाट्राके समान रूपोद्धता, प्रतिवासर नवीन प्रेमीको सर्प-दंश कराकर मार डालनेवाली विषकन्या है।

नारी वह जो कि निश्चल, निस्पद, क्रियाशून्य, लुटीसी खडी है प्रतीक्षातुरा श्यामाके समान कि बाबूने जो कुछ किया सो तो किया, पर बदलेमे नोट कितने मिलेंगे?

नारी वह जोकि कुलवधुएँ है फिर भी 'भूख और दारिद्र्यसे पीड़ित होकर' दिनमे ही अपने आपको बेच रही हैं—चोरीसे नही, धोखेसे नहीं, (इन सब सभ्यताके अलंकारोके लिए, उन्हे कहाँ अवकाश?) किंतु, केवल छ आने पैसेके लिए, जिसमे वे रोटी भर खा सके

नारी वह जोकि आधी रात भर सिलाईका काम करती है और एक दर्जन कमीज सीकर पाँच आने वेतन पाती है, उन फौजियोसे 'जिन्हे अपने शरीर बेचकर उनके मूल्यमे दो आने पैसे अतिरिक्त और कोई घातक रोग पाकर कृतज्ञ भी हो सकती है'

अमियका मन न जाने कैसी कैसी कल्पनाओसे मिचल आया। वह जल्दी-जल्दी होस्टल लौट गया। चित्र अधूरा ही रहा।

प्रकृतिका चित्र भी उतने उजले रगोसे नहीं बना है जैसा कि माना जाता है। कला और प्रकृति दोनो श्यामा हैं। 'श्यामा नयनाभिरामा कुसुम-सुषमा-रजिता सौख्य-

धामा. ’ स्रग्धराकी वे भव्य ‘ पक्तियॉ, और श्यामाके पैरोके खोटे चॉदीके बिछुए, ऑखोकी निर्लज्ज, ठिठकी, भावशून्य, निष्काम, पथराई पुतलियाँ। छि छि .

अलकाकी विरहिणीका सुरभियुक्त केश-सभार और वे सरसोके तेलसे चिपचिपे, सडॉध लिये हुए ढीले जूड़ेमे वंधे बाल !

इसी लावण्यकी स्वप्निल आभामे रत उज्वल नीलमणिकारने उस ‘ मधुमती भूमिका’को सार्थक कर कहा कि परकीयामे ही ‘ परमोत्कर्ष श्रृगारस्य प्रतिष्ठित ’—और एक यह अमियकी काम-पूर्त्तिकी कठपुतली है कि इसमें ‘ दु खं सर्वमनुस्मृत्य काम भोगान्निवर्तयेत् । ’.

अमिय साहित्य पढा है। सस्कृतकी काव्यतीर्थ परीक्षा दी। अग्रेजी साहित्यका मर्मज्ञान पाया। परतु संतोष साहित्यमे नही, कलामे नहीं, श्यामाकी पेशेवार रतिमे नही

शायद अनीतारूपी कस्तूरी–मृगमे हो। कलाके माया लोकमे हो। (शायद वहॉ भी न हो।)

[२]

अव्यभिचारी भक्ति और निष्काम प्रीतिकी बडी बडी डीग कवियो और दार्शनिकोने हॉकी है। परतु वह मृगजलसे कम नहीं।

उदाहरणार्थ यह अनीता ही ले लो। नृत्य–सगीतमे इसकी बराबरी करनेवाली शायद ही दूसरी लडकी यूनिवर्सिटीमे मिले, परतु यह प्रौढा किशोरिका इन सब निरर्थक शब्दोमे सपूर्ण विश्वास करती है।

अनीताको अपनी नृत्य-सगीतादि ‘ हाबियो ’ से अधिक जानवरोके सबंधमे पढते रहनेका भी शौक था। कई रगकी तितलियॉ उसने संग्रह की थी, और उसका बस चलता तो एक पूरा पक्षी-संग्रहालय वह अपने उद्यानमे बनाती। एक दिन वह कस्तूरी मृगके संबंधमे पढ रही थी—

—‘ कस्तूरीमृगकी तिब्वती और नेपू ये दो जातियॉ ही प्रख्यात हैं। मध्य एशियाकी पर्वत श्रेणियोमे, दक्षिण साइबेरिया, हिमालयमे ८०० फीटकी ऊॅचाईके जंगलोमे, जावा और सुमात्रामे ये पाये जाते हैं। साधारण बकरीकी ऊॅचाईके यह जानवर गर्मियोमे गुफाओ मे छिपे रहते है। सियालेमे पर्वतोसे नीचे उतर आते हैं। इनका शिकार बहुत कठि-नाईसे होता है। वे आदमीके पैरोकी आहटसे भागते है, चारो पैर पेटसे समेट, छलॉगे भरते हुए, बहुत द्रुत–गतिसे ’

अनीता भी पुरुषोसे बहुत अतर पर रहती है। उनसे डरती है।

—‘ चट्टानोके टूटे-फूटे हिस्सोमे ये मृग सहज-गतिसे भागते जाते है। पर्वतोपरसे नीचे उतरते समय, उनपर दृष्टि स्थिर नहीं रह सकती। दिनभर ये छिपे रहते है। रातको

भक्ष्य ढूँढने निकलते हैं। ये नखसे जमीन खोदकर वृक्षोंके मूल खोजकर उन्हें खाते हैं। बिल खोदकर उनमेसे सॉप निकालकर उन्हें खाते हैं। ’

बर्नर्ड-शाके ‘ मैन एंड सुपरमैन ’ की भूमिकामे नारीको किरातिनी और पुरुषको भक्ष्य क्यो कहा है? वह नये तरुण प्रोफेसर जिसने इस बातका उल्लेखकर, तूल देकर निरर्थक शाके स्त्री-द्वेष्टा-वृत्ति पर भाष्य किया—वह अनीताको एकदम नापसद है। उसे क्या आवश्यकता है कि शापैनहारकी भांति समय- असमय स्त्री द्वेष वह व्यक्त करता रहे? वह आगे पढ़ने लगती है—

—‘ कस्तूरीमृग जून या जुलाईमें बच्चे जनते हैं। मादा प्रतिवर्ष दो बच्चे जनती हैं। वे दोनों बच्चे दूर-दूर रखे जाते है। स्वयम् माता तीसरी ही जगह रहती है। सिर्फ उन्हें दूध पिलाने जाती है। दोनो बच्चे पास पास तो शायद ही कभी आते हों। बच्चे मा को नहीं पहचानते—उन कस्तूरी मृगके बच्चोको यदि किसी बकरीका दूध पिलाया जाय तो वे सहर्ष पीलेगे। वे बच्चे बहुत मजेसे दूध पीते है। एक बार ऊँचे छलॉग मारते हैं, एक घूँट दूध पीया, फिर दूसरी छलॉग. .’

अनीताके पतले अधरोपर एक खिन्न मुस्कान खिच गई। किताबसे दृष्टि हटाकर वह दूर कहीं देखने लगी। दीवालपर माता और शिशुका प्रेम अकित करनेवाला कोई चित्र था, वह उस चित्रकी मोटी कॉचकी फ्रेमको जैस फाड-फाड़कर देखने लगी। उसकी क्षुधित आँखे चित्रके आरपार होकर जैसे दीवालसे टकराई। और वहॉसे लौट गई। और लौटती हुई, प्रति चरण-विन्यासपर जैसे अनंत पीडा अपने साथमे समेटती हुइ। विमाताका अस्तित्व उसके जीवनकी एकमात्र ऐसी वस्तु थी, जिसपर उसका कोई वस नहीं चलता था, जो कि उसी दीवालकी भॉति उसकी स्वतंत्रताकी राहमे एक महाबाधा थी, जैसे हिमालयकी तराईका कस्तूरी मृग उस पार, कंचनजंघाके हिमाच्छादित शिखरोके पार। मानसरोवरकी निर्मल, नीलोज्वल, जीवनधारामे अवगाहन, आप्लावन करना चाहता हो, जैसे कस्तूरी मृगी कस्तूरीकी सुरभिसे अधी वनवनातरालमे उस सुरभिके श्रोतकी टोहमें पगलीसी घूम रही हो, जैसे किसी अदृश्य, अदर्शित स्नेह-ततुने उसे सहसा उस कस्तूरी मृग-शावकिनीमे परिवर्तित कर दिया हो, जो कि एक अजाके सूखे, दुग्धशून्य स्तनोंसे निरर्थक उलझ रही हो, अपने सिरसे टकराहाट मोल ले रही हो और बदलेमें पा रही हो अनवरत झिड़कियोकी झड़ी, जिसका कि मोटा, कर्कश, तीखा स्वर-स्पष्टत उसकी विमाता कादंबिनी देवीका है।

पुन· उसने पढनेमें मन लगानेका प्रयत्न किया —‘ कस्तूरी मृगके बच्चे पकड़नेसे कोई लाभ नहीं। वह पकडनेसे जल्दी अधे हो जाते हैं। कई पहाडी इलाकों और रियासतोंमे कस्तूरी मृग सरकारी सपत्तिके भाग होते हैं। उन्हे सरकारी हुक्मके बिना कोई मार नहीं सकता। कस्तूरीमृगका मास स्वादिष्ट होता है।.

—' कस्तूरीमृगकी नाभिके नीचें एक थैली होती है, जिसमे कस्तूरी सञ्चित रहती है। उसकी कीमत सोनेके बराबर होती है। यदि यह थैली निकाल ली जाय तो कस्तूरीमृग मर जाता है।

—' कई शिकारी इसका बड़ी चतुरतासे शिकार करते है। नेपाली जाल बिछाकर इन्हे पकड़ते हैं, तातार और एशियाई रूसी इन्हें तीरदाजीसे घायल करते हैं; तिब्बती कस्तूरी मृगके छोटे बच्चेकीसी आवाज कर उसे पर्वतसे मैदानमे उतारते है '

अनीतासे आगे न पढा गया। उसका बचपनसे एक अधविश्वास-सा है, कि जानवर और आदमीमे बहुत कुछ समानता है। आज उसे जैसे सबूत मिल गया।

फिर उसके अतर्मनमे न जाने क्यो दो बातें तैर गई। ' नाभिके नीचे '। विद्यापति का एक पद उसने कहीं सुना था—'सुरत क धन मोहि निवि मह शाम ?' . और कहीं उसने वह फारसी कहावत पढी थी कि ' इश्कारॉ व मुश्कारॉ ' (प्रेम और कस्तूरी) अधिक काल तक छिपे नहीं रह सकते।

काम और कस्तूरी! दोनो अमूल्य, अगोपनीय, नाभिके नीचे चर्ममजूषामे, . अनीता बहुत सोचमे पड गई कि सहसा घड़ीने सात बजाये। वह सोफेसे जल्दी-जल्दीसे उठी। सध्या–छाया घरमे फैल गई थी। दीप जलाये। स्विच दबाते ही विद्युत् जैसे सब कमरोमे फैल गई। वह ' टाइलेट-रूम ' मे जाकर बडेसे आईनेके सामने बैठकर शृंगार प्रसाधनमे जुट गई—।

उसे नौ बजेसे पहिले-पहिले आज संगीत-सम्मेलनमे पहुँच जाना है। पिता (श्री प्रभातचद्र दे, बार-एट-ला, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, बॉकुडा डिवीजन) छुट्टीपर कलकत्ते आये है। वे भी चलेगे। दुख है तो इतना ही कि कादबिनी और उनका लाडसे बिगाडा हुआ बच्चा मनोज भी साथमे चलेगा।

सगीतमे अनीताकी रुचि है। संगीतसे वह उतना ही प्रेम करती है, जैसे कोई कुरगिनी। फिर वह तो कुरगिनी नहीं है (कहा जा सकता है कि सु–रगिनी ही है।) वह कस्तूरीमृगी नहीं बनना चाहती है। वह नारी है, आधुनिक युगकी, मादाम क्यूरी और डोलोरस पैशनेरिया, पर्ल बक और ग्रेटा गार्बो, सरोजिनी नायडू और वीणा दास, जोया और विजया लक्ष्मीके युगकी नारी। वह निरीह मृगी नहीं है।

परतु सगीत सम्मेलनमे जुटे मनचले कलाकार और श्रोता, स्रष्टा और द्रष्टा, अनीतादेवीको ' मृगनैनी ' ही मानते थे। उससे किसी भी मात्रामे कम नहीं। इसके लिए वह क्या करे।

सगीत भी एक विचित्र प्रवञ्चना है। मृगजलको जैसे किसीने ' ईथर ' मे बिछा दिया हो।

सब चल दिये। मोटर सपाटेसे सरपट जा रही थी कि कुछ घटित हुआ, जो अकल्पित और अकल्पनीय था। एक बडासा जत्था जिसमे विद्यार्थी-मजदूर आर रास्ते चलते कई उचक्के भी शामिल थे, ठीक सगीत सम्मेलनके महाद्वारपर आकर रुका और जोर-जोरसे नारे देने लगा—सगीत-सम्मेलन बायकाट! यह समय संगीत सुननेका नही है! पं. जवाहरलाल गिरफ्तार हो गये! सब ओर हडताल हो! आदि-आदि।

वैसे शुद्ध संगीत स्वयम् जवाहरलालको अप्रिय होगा, यह कैसे कहा जा सकता है? परतु इस समय सगीतको अ-सगीत वनानेके लिए जवाहरलालके नामकी ओट लेकर विद्यार्थी अपने दिलका गुबार उन सचालको और गायको पर निकलना चाहते थे, जिनसे वे चिढे हुए थे। वैसे ही संगीत सम्मेलनके आरंभमे दो दल बन गये थे। एक दलका दूसरेपर अविश्वास था। परिणाम कोई ऐसे अवसरकी खोज जिससे उनकी इच्छा परिपूर्ण हो सके। ५ नवम्बर १९४० को विनोवा भावेके बाद दूसरे सत्याग्रहीके नाते पं. जवाहरलाल व्यक्तिगत सत्याग्रहमें कूद पड़े थे और न्यायालयमे जो करारा वक्तव्य उन्होने दिया था, वह गॉधीजीको कुछ हिसायुक्त जान पडा था।

प्रश्न यह नहीं था कि व्यक्तिगत सत्याग्रह कहॉतक उपयुक्त है या ऐसे दुविधाके समयमे जब एक ओर राष्ट्रका भाग्य परदेसियोकी मर्जीपर टॅगा है, दूसरी ओर विश्वमे युद्धके ताडवके कांस्यताल (गैग) बज चुके है। पर्दे हट चुके हैं और विराट झनझनहाटके साथ प्रलयकी वाहिनियॉ एक दूसरेपर झपट रही हैं, जैसे भूखे गिद्ध हो

अनीताने देखा विद्यार्थियोके जुलूसके अग्रभागमे अविनाश है। अविनाश, जिसे आधा सनकी मानकर क्लासमें बुद्ध बनाया जाता है, अविनाश, जिसके संबंधमे उसके एक रिश्तेदार कह रहे थे कि "अगर किरायेके पैसे ही नहीं है तो आये क्यो कलकत्तेमे पढने" कह कर स-सामान अविनाश चक्रवर्ती नामक एक विद्यार्थीको उन्होने अपने घरसे निकाल दिया था। अनीताके भी अतस्तलमे कहीं हलकी ठेस तब लगी थी। अविनाश नामक अज्ञात अपरिचितके प्रति सहानुभूति इतनी नही जगी थी, जितना कि उस रिश्तेदारके प्रति क्रोध। वैसे वे रिश्तेदार बोसबाबू बडे आदमी थे, पर सुना था उन्होने अपनी विवाहिता पत्नीके साथ अन्याय कर किसी सिनेमा-स्टारसे गठबंधन कर लिया था, सुना था कि वे जुआरी है, शराबी हैं और मक्कार हैं, सुना था कि .

दरवाजेपर हाथापाईकी नौबत आगई। विद्यार्थी किसीको अदर नहीं जाने दे रहे थे। अनीताका प्रस्ताव था कि चुपकेसे लौट चला जाय। अनीताके पिता मामूली हस्ती नहीं थे। न्यायपर इस प्रकार दिनदहाड़े पडनेवाला डाका उन्हें असहनीय था। वे तमतमाकर रह गये।

दरवाजेपर जाकर उन्होने कहा-जानते हो मै कौन हूॅ?

उत्तर मिला—होगे भद्रलोग तो अपने घर रहिये।

कुछ कड़ककर दे बाबूने कहा—इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम एक उच्च पदाधिकारीका अपमान.

अविनाश—परिणामकी चिंता करने हम यहाँ नहीं आये है। संगीत-सम्मेलन नहीं होगा।

उधरसे एक बूढे बीनकारको सहारा देते हुए उसका एक शिष्य धीरे-धीरे आ रहा था। उसने आते ही चिल्लाना शुरू किया–जाने दो, जाने दो। उस्ताद. खॉ आ रहे हैं।

कोई विद्यार्थी—खॉ हो या चॉ हो। आज इस दरवाजेसे कोई अंदर नहीं जाने पायेगा।

वृद्ध कलाकारकी ऑखे कुछ चमकीं। दाहिने हाथसे कुछ डाढीके और बॉई ओर जरीकी टोपीसे लटकनेवाले सफेद रँगाये बालोको सुहलाते हुए वे बोले–बेटा, फन्ने मूजिकीने भी कभी किसीका कुछ बिगाडा है? हमारी रुद्रबीन जो अदर कैद है। उसे छुडा दो।

नारे लग रहे थे। बेतहाशा, बेतरतीब, बे अन्दाज नारे! जहाँ निरा नारा है, वहाँ किनारा कम है। बूढे कलासेवककी ऑखे बच्चेके समान छलछला आई। वह बोला—तुम्हारा जवाहर जुग-जुग जीये। मगर हमे अपनी बीन वापिस दे दो, उसके बिना जीना नामुमकिन है।

उसकी बात किसीने नहीं सुनी।

अनीताने लौटते हुए देखा कि अविनाश बराबर चिल्ला रहा है। शायद उसके हाथमे कोई कागज है और म्यूजिक कान्फ्रेसके दीये व्यंगपूर्ण हॅसीसे इधर उधर बागके पेड़ोमे टिमटिमा रहे है। उसका मन सहसा किसी कुतूहल-मिश्रित घृणासे भर आया। मोटरकी खिड़कीमेसे उसने देखा, सगीत प्रेमी जनता निराश निस्पंद लौट रही है। राजनीति प्रचुर प्रदर्शक अपने विभिन्न स्वरोसे एक विचित्र 'हार्मनी' पैदा कर रहे है, मानो एकसाथ सब वाद्य बज उठे, और उन सबको अपने अपने तरीकेपर स्वर विस्तार करनेकी अनुमति दे दी गई हो।

कस्तूरीमृगको इस बहाने सगीत सुननेसे रोका गया था कि उसके हृदयमे बाण लगा था, कि उसकी आत्मा शरविद्धा थी। शरासन कहाँ था–? सायक कहाँ था?

चार कविताएँ

'अज्ञेय'

माघ-फाल्गुन-चैत

अभी माघ भी चुका नही
पर मधुका गरवीला अगवैया
कर उन्नत शिर
अगराई लेकर उठा जाग
भरकर उरमे ललकार
भालपर धरे फागकी लाल आग।
धूल बन गई नदी कनककी
लोट-पोट न्हाती गौरैया
फूल-फूल कर साथ-साथ जुर
ढीठ होगई चिरी-चिरैया।

आया हचकोला फागका
खग लगे परखने नये-नये सुर
अपने अपने रागका
(बिसरा कर सुध, कल बन जाएगा
यही बगूला आगका !)
'बिगडी बयारको ले जाने दो
सूखे पीले पात पुरानी चैतके।
इठलाती आई फुनगी,
पावसमे डोल उठी हरखाई नैया—
दिन बदला उनका, अब है काल खेवैया !'

सहसा झरा फूल सेमरका
गरिमा-गरिम, अकेला, पहला,
क्या टूट चला सपना वसन्तका
चौबारा, नौमहला
लाल रुपहला ?
झर झर झर लग गई झडीसी
टहनीपर बस टंगी रहगई अर्थहीन उखडी-सी
टुच्ची-बुच्ची ढोंडियां लॅंढूरी
पर-खोंसे झुलसे पाखी-सी
खिसियाए मुँह बाए !
पहले ही सकुची-सिमटी
दबगई पराजयके बोझेसे लद
किसानकी झुकी मचैया !

क्रमश. आए
दिन चैती : सौगात नई क्या लाए
बाल बिखेरे, अपना रूखा सिर धुनती
(नाचे ता-थैया)
बेचारी हर-झोंके मारी, विरस अकिंचन
सेमरकी बुढिया मैया !

हिमन्ती बयार

हवा हिमन्ती सन्नाती है चीडमे
सहमे पहुँची चिहुँक उठे है नीडमे
दरद गीतमे रुँधा रहा
बह निकला गलकर मीडमे
प्रिय तुम मेरे अन्तरमे
पर मै खोया हूं भीडमे !
सिहर सिहर झरते पत्ते पतझारके
तिर चले कहां पंखोंपर चढे बयारके
ले अन्ध-वेग नौका ज्यों बिन पतवारके !
जीवन है कच्चा सूत——रहू मै
ऊब-डूब सागरमे तेरे प्यार के !

एक चित्र

मुझे देखकर नयन तुम्हारे
मानो किंचित खिल जाते है
मौन अनुग्रहसे भरकर वे
अधर तनिक-से हिल जाते है
तुम हो बहुत दूर, मेरा तन
अपने काम लगा करता है
फिर भी सहसा अनजानेमे
मन दोनोके मिल जाते हैं !

इस प्रवासमे चित्र तुम्हारा
बना हुआ है मेरा सहचर
इसीलिए यह लम्बी यात्रा
नहीं हुई है अबतक दूभर——
इस उन्मूलित तरुपर भी क्यों
खिले न नित्य नई मंजरियां——
छलकानेको स्नेह सुधा जब
छवि तेरी रहती चिर-तत्पर ?

सैंतीस

घुट जाते है हाथ चौखटेपर
यद्यपि यह पागलपन है
रोम पुलक उठते हैं, यद्यपि
झूठी वह तनकी सिहरन है

प्राप्ति-कृपा है वर दाताकी
साधकको है सिद्धि-निवेदन

छवि-दर्शन तो दूर, मुझे
तेरा चिन्तन ही महा-मिलन है!

कैरा को

सुनो, कैरा, सुनो,
क्या मेरा स्वर तुम तक पहुचता है?

●

साहित्य की मर्यादा

रामदहिन मिश्र

साहित्य केवल मनोरजनका ही साधन नही है। उससे मानव और मानव-समाज प्रभावित होता है। उससे आचार-विचार, कर्म-धर्म, रीति-नीतिका सुधार ही नहीं होता, बल्कि एक ऐसा आदर्श उपस्थित होता है, जिससे लोक-कल्याण होता है, सयत तथा उदार होनेकी शिक्षा मिलती है और कुमार्ग छोडकर प्रभावित व्यक्ति सुमार्गका अवलम्बन करते है। इसीसे शास्त्रकारोने साहित्यकी एक मर्यादा स्थापित कर दी है। उसके विपरीत आचरणसे साहित्यमे एक प्रकारकी विच्छृंखलता उत्पन्न हो जाती है।

शकुन्तुलाका अग्रेजी अनुवाद हुआ और सारा पाश्चात्य-साहित्य-जगत उस पर मुग्ध हो गया। क्योकि उसमे भारतीय सभ्यताकी वह उज्ज्वल विभूति थी, मर्यादाकी वह मंगल मूर्त्ति थी, जो अन्यत्र दुर्लभ है। शकुन्तलाने ही भारतीयोको सभ्योकी श्रेणी में ला रखा। मानवता, सस्कृति, सभ्यता, सदाचार, चरित्र आदिकी दृष्टिसे उसपर कोई उँगली उठा नहीं सकता। शकुन्तलाने ही कालिदासको पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न साहित्यिकोको शेक्सपियरके साथ तुलनाके लिए सुअवसर दिया।

एक बार पारसी थियेट्रिकल कम्पनी शकुन्तला नाटक खेल रही थी। शकुन्तलाके नामपर भारतीय साहित्यके परम प्रेमी ग्रियर्सन साहब खेल देखने गये। कम्पनीके नाटककारने सस्कृतके 'नाट्येनोपविशति' का अर्थ उसने 'नाचते हुए बैठते है' समझा था। किन्तु उसका यथार्थ अर्थ है 'बैठनेका अभिनय करते है'। कम्पनीकी समझदारीके मुताबिक एक स्थानपर दुश्यंत कमर लचकाकर नाचते हुए बैठे। ग्रियर्सन साहब को यह असह्य हो गया और वे उठकर चले आये। वे नायकका यह अमर्यादित कार्य न देख सके।

नायक त्यागी, कुलीन, कृती, सुन्दर, युवा, उत्साही, समर्थ, तेजस्वी, चतुर तथा लोकरजक होते हैं। इनमे धीरोदात्त नायक प्रधान हैं। आत्मश्लाघाशून्य, क्षमावान, अति गंभीर, स्थिर, महाप्राण अर्थात् सुख-दुखमे अविचल, दृढव्रत और विनयसे गर्वको गूढ रखनेवाले होते हैं। ऐसे ही धीरोदात्त नायक दुष्यन्त थे। ऐसे नायकका भठियारेके समान नाचना किसी सहृदयको कैसे सह्य हो सकता है। आज ऐसे कितने सहृदय है, जो नायककी अमर्यादासे अपने साहित्यको सुरक्षित रखनेके लिए प्रयत्नशील हो। अब नाटकका स्थान सिनेमाने ग्रहण कर लिया है, पर उसके वार्त्तालापमे यह ध्यान नहीं रखा जाता कि उनके आचरण और कृत्य कैसे हो। उदाहरणके लिए 'शंकर-पार्वती' को लें। शंकरजी दिव्य नायक है। वे देवाधिदेव है। उनका चरित्र ऐसा चित्रित किया गया है, जो एक साधारण नायकके लिए भी दूषित है। वे भिल्लिनीके नृत्यपर लट्टू हो जाते हैं और पार्वतीके परोक्षमे उसके सहवासकी कामना प्रगट करते है। हम मानते हैं कि वे अन्तर्यामी है और उनसे कोई बात प्रच्छन्न नहीं, पर उनके मुखसे इस प्रकार की बाते कहलाना भारतीय सस्कृति और मर्यादाके एकदम विपरीत है। जगज्जननी पार्वती का वारवनिताके समान नृत्य उससे कम दूषित नहीं। दिव्य नायिकाका नृत्य साहित्यिक मर्यादाके अत्यन्त विरुद्ध है। अन्यान्य भाषाओ मे ऐसी धाँधली नहीं है, जैसी कि हिन्दीमे। उसका कारण यह है कि हिन्दीके निर्देशक और संवाद-लेखक उस विषयके अनभिज्ञ है। वे साहित्यकी मर्यादाको नहीं समझते। जनरुचि और आर्थिक लाभ ही सर्वोपरि नही है। उनसे कहीं उच्च हमारी सस्कृति और सभ्यता है, जिनपर किसी प्रकारकी आँच नही आनी चाहिए।

भाषाकी भी वडी दुर्दशा है। सिनेमा-सवादोकी भाषा सुननेसे कानोको कचोट होती है। उच्च पात्रोके मुखसे ऐसी भाषा सुननेमें आती है, जिसका न सुनना ही अच्छा। अदिव्य नायककी कौन कहे, दिव्य नायकोके मुखसे भी फारसीके ऐसे अलफाज निकलते है, जैसे मौलाना साहब तकरीर करते हो। कीट मुकुटधारी पात्र हो या आर्य-प्रकृति-रीतिके अनुरूप वेश-भूषाधारी हो, उसके मुखसे निकली फारसीसे भारी-भरकम भाषा शोभा नहीं देती। उदाहरणके लिए 'विक्रमादित्य' को लीजिये। सभ्यता, सस्कृति और कलाकी दृष्टिसे विक्रम युग एक स्वर्णयुग था। किसी किसी अशमे इसका प्रदर्शन भी है, पर भाषाकी दृष्टिसे वह भ्रष्ट है। सभ्यता, सस्कृति और कलाके उन्नायक

कालिदासके मुखसे 'अजब कुदरतकी माया' जैसी भाषामें कविता पाठ कराया जाता है! जो निर्देशक इंटरवलके लिए 'मध्यान्तर' रखे, उस कालिदासके लिए भाषाका अकाल हो गया। आश्चर्य! यह भारतीय शिष्टताके लिए कलंककी बात है। नाटकमें काल पात्रके अनुकूल ही भाषा होनी चाहिए। भाषाका यथायोग्य निर्वाह होना आवश्यक है। जब नाटक या सिनेमा अनुकृति प्रधान है, तब उसकी प्रतिष्ठा क्यो न की जाय ?

पारसी नाटक कंपनियोंका जमाना गुजर गया जबकि दुःखमे भी गाने और गीतमें ही रोनेका दृश्य दिखाया जाता था। सिनेमामें ऐसी स्थिति तो बहुत कम देखनेमे आती है, पर अधिकाश सिनेमामें नायक-नायिका ऐसे ही चुनकर रख जाते है, जो गान कुशल होते हैं। नाटकीय मर्यादाके अनुसार नायक नायिकाका गायक होना विशेष गुण नहीं, नायकके दरबार मे नृत्यगीत होते है, गायक जाकर इनका स्तुति गान करते हैं और सगीतसे इनका यथावसर मनोरजन किया जाता हैं। अब ये ही गाने गाते है, जिससे शिष्ट नायककी अप्रतिष्ठा होती है, इनकी मर्यादा भंग होती है।

सिनेमामें अनावश्यक और अनुचित गीतोकी अवतारणा भी साहित्यक रुचिका विघातक है। इससे न तो सिनेमाकी कथावस्तुको और न ही अन्यान्य नाटकीय व्यापारको ही विकासमे सहायता मिलती है। संगीत चित्रोंके प्राण हैं,उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु कहाँ हो कैसा हो, इसका भी परिमाण है। अस्थानमे गीतोका निवेश रस भंग ही करता है, जैसा कि चित्रोमे प्राय देखा जाता है। अधिकतर सिनेमाके गीत वासनाको उत्तेजित करनेवाले तथा सस्ती रचनाके नमूने होते हैं। सामाजिकोके हृदयका आकर्षण ही सिनेमाका प्रधान कार्य नही, बल्कि उसे उज्ज्वल बनाना भी कर्तव्य है। साहित्यिक गीतकारो को इधर ध्यान देना चाहिए।

फ्रायडवादने भी हमारी साहित्यिक मर्यादा भंग करनेकी कमर कस ली है। नवयुवक कलाकार न जाने किस कारण इसपर लट्टू हो गये है। यह पश्चात्यवादका विचार कोई नया अविष्कार नहीं। हमारे यहाँके नीतिकार हजारो वर्ष पहले इस मनोवैज्ञानिक विचारका उल्लेख कर चुके है।—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रावान विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

व्याख्या अनावश्यक है। साहित्यके लिए श्रेयस्कर न होनेके कारण यह विचार पल्लवित तथा पुष्पित न हो सका।

एक कलाकार एक स्थानपर लिखते है:—

"बहिनके गाने सुनते-सुनते एकाएक कोई अज्ञात भाव बालकके मनमे जाग जाता है। वह एकाएक उत्पन्न नहीं हुआ, कई दिनोसे धीरे-धीरे उसके हृदयमे अकुरित हो रहा है, किन्तु यह उसकी व्यंजनीय सम्पूर्णता नयी है, आज ही मालाएँ पहनाते समय

और गायन सुनते समय उसके मानसिक क्षितिजके ऊपर आयी है । एक अत्यन्त कोमल स्पर्शसे बहिनके कपोलको छूकर बालक कहता है—' कितनी अच्छी लगती हो तुम ! ' और बहिन भी उसे समझती है । वह फिर हँसती है और एक बहुत क्षीण-सी लज्जासे अधिक सुन्दर हो उठती है और मुँह फेरकर पानीमे देखने लगती है । "

अनजानमे भी भाई-बहिनके इस प्रेममे काम-वासनाकी हल्की झाँकी दीख पड जाती है । ऐसे विचारके साहित्य और साहित्यकको प्रोत्साहन देना अनुचित है । भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति कमसे कम सौ वर्ष तक ऐसे विचारोका समर्थन न करेगी । अधिक-तर पाश्चात्य विचारक भी फ्रायडवादका समर्थन नहीं करते । घासलेटी साहित्यके नामसे पहले यहाँ भी इसका प्रबल विरोध हो चुका है ।

साहित्यमे फ्रायडवादके प्रवेशसे सामाजिक आचार-विचार तो नष्ट होगे ही, मानवता पर भी उसका घातक प्रभाव पडे बिना न रहेगा । मनुष्यके उत्कर्षके लिए ही साहित्य है और वह तभी उत्कर्षक होगा, जब कि उसकी मर्यादाकी रक्षा की जायगी ।

विक्टर ह्यूगोकी कविताएँ

रामविलास शर्मा

हिन्दीके पाठक विक्टर ह्यूगोके नामसे भली-भाँति परिचित हैं । उनके उपन्यासोने यूरुप मे वह नये मानववादी उपन्यासोंकी परम्परा आरम्भ की जिसे तोलस्ताय और तुर्गनेव जैसे लेखकोने विकसित और पुष्ट किया । उपन्यासकारके साथ वह फ्रान्सके महान कवि भी हैं जिनका फ्रान्सीसी वैसे ही सम्मान करते है जैसे अंग्रेज शेक्सपियरका । १९ वी सदीके पूर्वार्द्धमें उन्होंने पुरानी रूढियोको तोडकर नये रोमाण्टिक साहित्यकी नीव डाली । "लेमिजेराब्ल" के पाठक जानते हैं कि यह नवीन परम्परा कितनी शक्तिशाली थी । उनकी कविताओकी छाप १९ वी सदीकी फ्रासीसी कवितापर ही नही पड़ी, वरन् इगलैण्ड और अन्य देशोके भी क्रान्तिकारी कवियोने उससे प्रेरणा प्राप्त करके सजीव साहित्यकी रचना की है ।

ह्यूगोका जन्म एक पुराने स्पैनिश गाँवमे हुआ था । उनके पिता नेपोलियनकी फौजमे अफसर थे । माताने ही उनका लालन-पालन किया और उनकी शिक्षाका प्रबन्ध किया था । पिताके विपरीत वह राजसत्ताकी समर्थक थी । इसलिये ह्यूगो भी पहले प्रजातंत्रके विरोधी रहे । अनेक पुरानपंथी आलोचकोने उनके राजनीतिक विचारोमे असंगतियाँ दिखाई है, लेकिन नैपोलियन तृतीयके गद्दीपर बैठनेके बादसे वह बराबर प्रजातंत्रके दृढ़ समर्थक बने रहे, इसमे सन्देह नहीं । बीस साल तक वह फ्रान्ससे बाहर प्रवासीका जीवन बिताते रहे, क्योकि उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक उनके देशमे सम्राटका स्वेच्छाचारी

शासन रहेगा तब तक वे उसमें पैर न देंगे। १८७०में वह फिर फ्रान्स लौटे और जनताने उनका ऐसे स्वागत किया, जैसे स्वर्गसे कोई देवता आया हो। "ले शातीमॉ" में उनकी तीव्र व्यंग्य पूर्ण राजनीतिक कविताएँ हैं, "लालेजॉद द सियेक्ल" में उन्होने जनसाधारणके बारेमे मर्मस्पर्शी रचनाएँ की है। "लेकोन्ताम्प्लासियो "मे उनका बेजोड गीति काव्य है। इन काव्य पुस्तकोका महत्व उनके उपन्यासोसे कम नहीं है। कलाकी दृष्टिसे उनकी रचनाओ मे बहुतसी खामियॉ दिखायी गयी हैं, लेकिन उनकी सभी कृतियोपर उनके उद्धत क्रान्तिकारी व्यक्तित्वकी छाप हैं। उनकी सफल वर्णन शैली और प्रवाहपूर्ण भाषा पतझारके पत्तोकी तरह द्रुतवेगसे पाठकको बलात् अपने साथ बहा ले चलती है। उनमे एक महान् कविका वैचित्र्य भी है, यदि वह मौस्कोसे लौटती हुई नैपोलियनकी फ़ौजका महानाटकीय चित्रण कर सकते हैं, तो उसी कुशलतासे एक आनन्द विभोर पितामहके रूपमे छोटेसे बच्चेकी निर्दोष मुस्कानका भी। हर महाकविके समान ह्यूगो भी अनुवादकके लिए एक विकट समस्या हैं। फ्रेञ्च भाषाका पूर्ण भण्डार उनके सामने खुला हुआ है और शब्दोका ऐसा निपुण चयन फ्रान्सीसी साहित्यमे भी कठिनतासे मिलेगा। इसके साथ अन्य कवियो से अधिक छन्दका प्रवाह उनकी कविताके प्रभावमे सहायक होता है। पाठक अपनी कल्पनापर भरपूर जोर देनेसे ही हिन्दीके अनुवादसे उनके काव्य-सौन्दर्यका हलकासा अनुमान कर सकेगे।

पहले हम उनकी नैपोलियन पर कविता देते है, जिसके तीनो भाग मिलकर एक सुसम्बद्ध काव्यनिर्माण कलाका बडा सुन्दर उदाहरण पेश करते है। ह्यूगोकी पीढी नैपोलियन पर मुग्ध थी क्योकि उसने विदेशी शत्रुओसे फ्रान्सकी रक्षा की थी। लेकिन प्रजातंत्र का रक्षक न रह कर, वह उसका ध्वंसक सम्राट भी बन बैठा था। इसलिये यह पीढी उसे एक स्वेच्छाचारी शासकके रूपमे भी देखती थी। ह्यूगोने उसके उत्थान-पतनको चटकीले रंगों और काली छायाओके अद्‌भुत मिश्रणसे चित्रित किया है। मूल कविता १२ सिलेबलकी अलेग्जैड्राइन—अग्रेजीके ब्लैक वर्सकी तरह लेकिन उससे लंबी फ्रान्सकी लोकप्रिय छन्द-पंक्ति—मे लिखी गयी है। बादकी तीन कविताओका सम्बन्ध नैपोलियन तृतीयके शासन कालसे है।

पश्चात्ताप

[१]

बरफ गिर रही थी। विजेता अपनी विजयसे ही पराजित हुआ।
पहली बार ईगल की पताका नत हुई थी।
भयावने दिन! सम्राट् धीरे धीरे लौट रहा था,
उसके पीछे धुँएँ की गुन्जों मे लिपटा हुआ मौस्को सुलग रहा था।

बरफ गिर रही थी। कठोर शिशिर अवलाश बनकर फट पड़ी थी।
एकके बाद एक वही बरफसे ढँके हुए सफेद मैदान;
पताकाएँ-वाहक और सेनापति जैसे अपना भेद खो चुके थे।
कलकी चतुरगिनी, आज एक फौजी टुकडी बन गयी थी।
कहाँ उसका केन्द्र था, कहाँ उसके पार्श्व थे ?
बरफ गिर रही थी। घायल मुर्दा घोडोके पीछे
छिप रहे थे। पडाव की सूनी जगहो मे
वादक ताँबेकी तुरहीपर आपने बर्फ-जमे ओँठ लगाये हुए
घोडोकी जीन पर, चुपचाप, तुषारसे सफेद बने हुए,
अपनी-अपनी जगह पर ठंडसे जमे हुए खडे थे।
बरफके टुकड़ोके साथ, गोली, गोले और बारूद बरस रही थी।
नैपोलियनके पुराने फैाजी (ले ग्रेनादिये), जिनकी भूरी मूछो पर,
बरफके कन जम रहे थे, अपनी कॅपकॅपीसे चैांककर उदास-मन आगे बढ रहे थे।
बरफ गिर रही थी और गिरती ही चली जा रही थी। तीखी उत्तरी हवा
सीत्कार करती बह रही थी। इस तुषारसे भीगी अजानी धरती पर
रोटीका कहीं ठिकाना न था, पैरोमे जूते न थे।
ये समरभूमिके सैनिक नहीं थे, जिनके हृदयमे उष्ण रक्त प्रवाहित हो
यह कुहरेमें भटकता हुआ एक स्वप्न था—एक रहस्य,
काले आकशके नीचे छायाओकी पाँति !
दृष्टिको पथरा देने वाली, चतुर्दिकव्यापी,
विशाल निर्जनता मौन प्रतिशोध ले रही थी।
नीरव आकाश मोटी बर्फ की तहें बिछा कर
इस विशाल सेना के लिये एक विशाल समाधि तैयार कर रहा था।
और प्रत्येक सैनिक मृत्युके सामीप्यसे अपने अकेलेपन का अनुभव कर रहा था।
क्या वे इस श्मशान-राज्य के बाहर कभी निकल पायेगे ?
शत्रु दो थे, जार और उत्तरी प्रदेश, दोनो में वह प्रदेश ही भयानक था।
लोग काठ का ढाँचा जलाकर तोपे फेक देते थे।
जो एक बार सोया, वह फिर नहीं उठा। सारी सेना पर मातम छाया हुआ था।
सैनिक भागते थे और वह निर्जनता उन्हे निगलती जाती थी।
धरती पर बर्फ के ऊँचे उठे हुए पर्त देखकर कोई भी कह सकता था,
यहाँ पर पल्टनेकी पल्टने गाढ़ी नीद मेंसो गयी है !
हानिबल का पतन ! कल जो अटीलाका गौरव प्राप्त करता !
भगोडे, घायल, मृतप्राय सैनिक, गोलीबारूदकी गाडियाँ, ठेलें, स्ट्रेचर,

उसने आज्ञा दी—रक्षक दल बढे और आक्रमण करे।
और अपनी विशेष भूषामे लॉसियर, ग्रेनादियर,
ड्रैगून, जो रोमकी अक्षौहिणीको गौरवान्वित कर सकते थे,
क्यूरासियर, तोपोको ले चलनेवाले कानोनियर,
चमकीले टोप या काले फरकी फौजी टोपी लगाये
फौजी फ्रीडलैंड और रिवोलीके निवासी,
यह जानकर कि इस समारोहमे उन्हें प्राण देना है,
उस तूफानमे घुसनेके पहले उन्होने ईश्वरको प्रणाम किया।
फिर उनके मुहँसे एक आवाज निकली—" सम्राट्की जय ! "
फिर अविचलित सगीतके साथ, मन्द गतिसे,
प्रशान्त, अंग्रेज तोपोकी ओर मुस्कराते हुए,
सम्राट्के रक्षकदलने उस अग्निकुण्डमें प्रवेश किया।
नैपोलियनकी एक मात्र आशा यह रक्षकदल था। उसने देखा, वे बढ़ रहे थे,
जहॉ काली तोपे गन्धकके रगकी बारूद उगल रही थी,
उसने देखा कि एकके बाद एक इस भयानक अग्निकुण्डमे
यह ग्रैनाइट और इस्पातकी सेना घुलती जा रही है
जैसे भट्टीकी ऑचमे मोम घुल जाता है।
हाथोमें हथियार लिये, माथा ऊँचा किये, स्थिर-चित्त और गंभीर
वे आगे बढे। एकने भी पीछे पैर नहीं दिया। सोओ,, मृत ओद्धाओ !
उनके शवोपर शेष सेना-आगा पीछा करती खडी रही
वह उनकी मृत्युका दृश्य देखती रही। तभी
भयभीत आकृतिके देवकी तरह पीतवर्ण अशान्ति
गर्वीली सेनाको त्रस्त करते हुए, धुएँमे लिपटे हुए प्रेतकी तरह
पताकाओको चिथडोमे बदलते हुए, सेनाओके बीचमे
सैनिकोके सामने प्रकट हुई और हाथ उठाकर उसने कहा
" भागो जिससे भागते बने ! " भागे ! अपमान ! पतन !
सभी मुँह चिल्लाने लगे—भागो, भागो ! और तभी मैदानोमे
विचलित, त्रस्त, अचेतसे सैनिक, जैसे उनपर कोई बयार चल गई हो,
गोली-बारूदके छकडो, धूलभरी गाडियोके बीचसे,
खाइयोमें लोटते हुए, जौके खेतोमें छिपते हुए,
अपनी फौजी टोपियॉ, लबादे, बन्दूके और ईगल-पताकाएँ
फेंकते हुए, हा हन्त ! ये योद्धा जर्मन तलवारोके सामने
कॉपते, रोते, भागते जाते थे ! पलक मारते

जैसे हवा जलते हुए भूसेको उड़ा देती है,
उस महान् सेनाका नाम भी मिट गया।
और दुर्भाग्य! यह समरभूमि जहाँ हम आज वह स्वप्न देख रहे हैं,
उसने उनको पीठ दिखाते देखा जिन्हें दुनियाँ पीठ दिखा चुकी थी।
चालीस वर्ष बीत गये, और धरतीका यह टुकड़ा,
वाटरलू! यह श्मशानसा भयावना निर्जन पठार
यह दुष्ट भूमि जहाँ ईश्वरने कितने शून्य एकाकार कर दिये,
उन देवोका पलायन याद करके यह भूमि अब भी काँप उठती है।
नैपोलियनने उन्हे नदीके प्रवाहकी तरह बहते देखा,
आदमी, घोडे, वादक, झंडे उठाने वाले—सभी बहे जा रहे थे,
उस परीक्षामे फिर वही अस्पष्टसी पश्चातापकी भावना उठते देखकर,
नैपोलियनने आकाशकी ओर हाथ उठाकर कहा—"मेरे मृत योद्धाओ!
मै पराजित हुआ! मेरा साम्राज्य काँचकी तरह टूट गया।
निष्ठुर दैव! क्या इस बार मुझे यह दंड मिला है?"
तब तोपोंकी गडगडाहट, और सैनिकोकी चीख—पुकारके बीचमे
उसने सुना, कोई उत्तर दे रहा है,—"नहीं।"

[३]

उसका पतन हुआ। दैवने यूरुपका भाग्य बदल दिया।
कुहासेमे लिपटी हुई सागरकी तलहटीमें
पुराने ज्वालामुखियोके लावासे बनी हुई एक चट्टान है
जहाँ नियतिने हथौडा, कीलें और हथकड़ियाँ लेकर
मेघोके इस पीतवर्ण और विचलित पक्षीको पकड़कर
प्रसन्न मन उस पुरानी चट्टानपर ले गई कि उसे वहाँ वन्दीकर दे
और अपनी व्यंग्यपूर्ण हँसीसे वह अंग्रेज गिद्धको
उसका हृदय चीथनेके लिये उकसाती रही[१]
गौरवका विशाल सूर्य अस्त हो गया।
भोरसे रात्रितक, वन्दीका वही एकान्त वही विजनता
सामने लाल वर्दीमे एक सिपाही था, क्षितिज पर समुद्र!
नंगी चट्टाने, भयावने वन, लगातार वही ऊब और सूनापन,!

---

१ विक्तर ह्यूगोका इंगित ग्रीक वीर प्रोमीथ्यूसकी कथाकी ओर है जिसे अग्नि चुरानेके अपराधमे इसी प्रकार चट्टानपर दंड दिया गया था।—अनु.

जहाजके पाल-आशा की तरह उड़ते निकल जाते थे।
लगातार लहरोंका गर्जन हवाओंकी वही आवाज !
विदा, वह सुनहले तम्बुओंका ठाट-बाट, वह घोड़ा जिसे सीजर, ऍड लगाता था
अब नहीं समर भूमिका तूर्यनाद, नहीं राज मुकुट
अब नहीं छायामें भय-त्रस्त नत नरेश,
न उनके ऊपरसे खिंचता हुआ नैपोलियनका उत्तरीय !
अपने पतनके बाद नैपोलियन अब केवल बोनापार्ट रह गया था।
पार्थियन शत्रुके तीरसे घायल रोमनकी भाँति
वह आहत, उदासचित्त स्वप्नमें देखता था कि मौस्को जल रहा है।
अंग्रेज कार्पोरल उसे आज्ञा देता था--हाल्ट !
उसकी सन्तान दूसरे नरेशोंके हाथमें थी, उसकी पत्नी दूसरेके बाहुपाशमें।
गड्हीमें लेवारी लेते हुए शूकरोंसे भी गर्हित !
उसकी सेनेट (राजसभा) जो उसकी चाटुकारिता करती थी, अब उसे अपमानित करती थी !
उस समय जब ठंढी हवा शान्त हो जाती थी, समुद्रके किनारे
काले मलवेसे दबी हुई ऊँची चट्टानोंपर
वह लहरोंका वन्दी एकान्तमें स्वप्न देखता था।
उसकी आँखोंमें अब भी कलके युद्धोंका स्वप्न था।
वह पहाड़ों, लहरों, और आकाशपर अपनी उदास गर्वीली दृष्टि डालता।
और अपनी कल्पनाको निर्बन्ध विचरने देता।
गौरव, कीर्त्ति, शून्य ! प्रकृतिकी शान्ति !
उड़ते हुए ईगल पक्षी अब उसे पहचानते न थे !
नरेशोंने, जो उसके द्वारपाल थे, एक कम्पास लेकर
एक दुर्लंघ्य वृत्तके भीतर उसे वन्दी बना दिया था।
उसके अन्तिम दिन निकट आ रहे थे। तुषार--जडित दिवसके ठिठुरते भोरकी तरह
रात्रिके अन्धकारमें मृत्युका आकार स्पष्टसे स्पष्टतर होता गया।
उसके प्राण आधे निकलसे चुके थे, वे काँप रहे थे।
एक दिन उसने अपनी तलवार बिस्तर पर रखी
और उसकी बगलमें लेटकर उसने कहा--बस आज आखिरी है।
उसने मोरंगोकी विजयपोशाक पहन ली।
नील, डैन्यूब, टाइबर नदियोंके युद्ध
उसके नयनोंमें घूमने लगे। उसने कहा--मैं स्वतंत्र हो गया !
मैं विजेता हूँ ! ये ईगल--पताकाएँ उड़ रही हैं !

और जैसे ही उसने मृत्युके अंतिमक्षण अपना सिर घुमाया,
उसने देखा कि निर्जन गृहमे एक पैर रखे,
आधे खुले दरवाजेसे हडसन लो उसे टकटकी लगाये देख रहा है
तब नरेशोंके पञ्जोसे विक्षत वह देव चिल्ला उठा
" मेरा घट भर गया है। हे दैव, मै प्रार्थना करता हूँ
अब, सब समाप्त कर ! तूने मुझे दंड दे लिया !" उसी स्वरने उत्तर दिया—"अब भी नही।"

चाँद

ओ फ्रान्स, यद्यपि तू सो रहा है,
फिर भी हम तुझे पुकार रहे है, हम जिन्हें देशनिकाला मिला है,
अन्धकारके भी कान होते है,
और गम्भीर गह्वरोसे शब्द निकलता है।
यह कठोर और गौरवहीन निरकुशता
हतोत्साह त्रस्त जनताको,
भ्रम और रूढ़ियोके मोटे काले तवेसे ढँके हुए है।
निर्भीक विचारको और वीरोके
उस समूहको जो जनताके प्रति सच्चा है
निरकुशता बन्दीगृहमे डाल रखती है, लेकिन विचारशक्ति
अपने पंख खोलकर सीखचोके पार उड चलेगी,
और सन् ९१ की तरह। *
वह अपनी हरणकी हुई सपत्तिको फिर लेलेगी,
क्योकि इन सीखचोसे
उसके पंखोमे अधिक शक्ति है।
दुनिया पर अँधेरा छाया हुआ है
लेकिन विचार-शक्ति प्रकाश फैलाती हुई चमक रही है,
अपनी श्वेत अमन्द प्रभासे
वह रात्रिके अन्धकारको उद्भासित कर रही है।
वही एक प्रकाश स्तम्भ है,
वही ईश्वरकी भेजी हुई किरण है।
वह धरतीका दीपक है
जिसे स्वर्गसे प्रकाश मिलता है।

---

* क्रान्तिके बादके दिन—अनु.

दुखी आत्माको वह दिलासा देती है,
जीवनको मार्ग दिखाती है, मृत्युको सुला देती है,
आततायियोंको वह भँवरमें ले जाती है
और न्यायकेलिए लडनेवालोको वह, पार लगाती है।
देखो, उस घने कुहासेमे
वह दुखी नयनोका अञ्जन,
विचार-शक्ति, शान्त, निर्दोष, शीतल,
अँधेरी क्षितिज ऊपरसे उठ रही है।
घृणा और अन्ध-भक्ति
धरती पर कुहराम मचा रही हैं,
जैसे आकाशमे चाँद निकलने पर
दुष्ट कुत्ते चिल्ला उठते हैं।
हे राष्ट्रो, इस गर्वीली विचार-शक्तिका ध्यान करो,
उसके अतिमानवीय भाल पर
अभी वह छटा है
जो कल तुम्हें पूर्ण रूपसे प्रकाशित करेगी।

कृष्ण अहेरी

यह कौन जा रहा है? वनमे अँधेरा है,
झुंडके झुंड कौए उड रहे हैं।
पानी बरसनेवाला है।
हे कृष्ण अहेरी,
इन छायाओमें चलनेवाला मै अकेला हूँ।
वनकी पत्तियाँ हवासे डोलती सन् सन् कर रही हैं।
लोग कहते है कि रात्रिमे डायनोके नृत्य-गीतकी ध्वनिसे
सारा वन भर गया है।
बादलोके बीच एक खुली जगहमे
चाँद निकल रहा है।
हिरनका आखेट कर! हिरनीका आखेट कर!
तू वनमे दौड, और ऊसरमे दौड!
अब शाम हो गयी है।
तू जारका आखेट कर, तू आसि्याका आखेट,
हे कृष्ण अहेरी!

वनकी पत्तियाँ—
तू अपना श्रृंगी बजा, तू अपनी कमर कस ले !
जो गाँवके डाँड़ेपर बारह सींगे चरने आगये हैं,
तू उन्हें मार भगा।
तू शाहशाह और पुजारियोंका आखेटकर,
हे कृष्ण अहेरी !
वनकी पत्तियाँ—
बिजलीकी कड़क, यह मूसलाधार पानी, मालूम होता है, प्रलय आ गयी है।
सियार भाग रहे हैं, निराश्रित और निराश !
तू न्यायाधीशों और गुप्तचरोंका आखेटकर,
हे कृष्ण अहेरी !
वनकी पत्तियाँ—
सैंत-आन्त्वानके दैत्य+
ओटके खेतोंमें चुपचाप भाग रहे हैं।
तू पादरियों और मठाधीशोंका आखेटकर,
हे कृष्ण अहेरी !
वनकी पत्तियाँ—
तू भालूका आखेटकर ! इन गुर्रानेवालोंके झुंडका आखेटकर
कि एक भी शूकर बचकर न जा सके !
तू अपना कर्तव्य कर !
तू सीजर और पोपका आखेटकर,
हे कृष्ण अहेरी !
वनकी पत्तियाँ—
भेड़िया राह छोड़कर अलग होगया है
कि तू अपने साथियों अनुयाइयोंके साथ निकल जाय !
दौड़ ! इतका पतन पूर्ण कर !
डाकू बोनापार्टका आखेटकर,
हे कृष्ण अहेरी !
हवासे डोलती वनकी पत्तियाँ धरती पर गिर रही हैं,
लोग कहते है कि कर्कश ध्वनि करनेवाला वह भयावह नृत्य-गीत
वनसे दूर चला गया है।

+ पुरोहित-वर्ग—अनु.

मुर्गेकी साफ आवाज बादलोंतक पहुँच रही है;
हे ईश्वर! ऊषाका प्रकाश फूट रहा है!
आँखोको सुन्दर लगनेवाले फ्रान्स तेरा अभ्युदय हो रहा है।
तू अपनी पूर्व शक्तिको फिर प्राप्त कर रहा है।
तू प्रकाशके वस्त्र पहने श्वेत देवदूत है,
हे कृष्ण अहेरी!
हवासे डोलती वनकी पत्तियाँ धरती पर गिर रही हैं,
लोग कहते है कि कर्कश ध्वनि करने वाला वह वह नृत्य गीत,
वनसे दूर चला गया है।
मुर्गकी साफ आवाज बादलो तक पहुँच रही है,
हे ईश्वर! उषाका प्रकाश फूट रहा हैं!

चार तारीखकी रातकी याद

बच्चेके सिरमें दो गोलियाँ लगी थी।
मकान सादा, छोटा, मामूली सा था।
एक तस्वीर पर पूजा की एक टहनी बँधी हुई थी।
घरके भीतर एक बूढी दादी बैठी रो रही थी।
हम लोगोने चुपचाप कपडे उतारे। बच्चेका पीला मुँह
खुला हुआ था, आँखोमें मृत्युकी जड़ता छागयी थी,
उसके शिथिल हाथ मानो सहारेके लिये फैले हुए थे।
एक जेबमें खेलनेका लट्टू था।
शरीरमें उँगली-बराबर गहरे घाव थे।
तुमने झाड़ीमें मकोइयोंका लाल रस बहते देखा है?
उसका सिर उस वनकी तरह था जिसके वृक्ष बीचसे कट गये हो।
दादी देख रही थी कि बच्चेके कपडे उतारे जा रहे हैं।
उसने कहा—कैसा सफेद पड़ गया है। जरा दियेके पास आओ।
भगवान्! माथेपर बाल चिपक कर रह गये हैं!
इसके बाद उसने बच्चेको घुटनोपर रख लिया।
रात अँधेरी थी बाहर गलीमें गोली चलनेकी आवाज सुनायी दे रही थी,
जहाँ वे अभी दूसरोकी हत्या कर रहे थे।
हमलोगोने कहा बच्चेको कफनसे ढक देना चाहिये।
और उसे ढकनेके लिए आलमारीसे एक सफेद कपडा निकाला गया।
बूढी दादी चूल्हेके पास गयी
मानो वह उसके ठिठुरे हुए अगोको सेकना चाहती हो!

अफसोस! मौत जिसे अपने ठंढे हाथोंसे छूलेती है,
वह यहाँकी आगसे फिर नहीं गरमाया जा सकता।
उसने उसका सिर झुकाया और हाथ फैलाये,
और अपने बूढ़े हाथोंमे मुर्देके पैर उठा लिये।
उसने कहा—इसे देखकर किसका जी दुखी न होगा?
भाई, अभी तो यह आठ सालका भी नहीं हुआ था!
वह स्कूल जाता था और उसके मास्टर बड़े खुश रहते थे।
जब मुझे किसीको चिट्ठी भेजनी होती थी, तो वहीं लिखता था!
क्या आज-कल वे बच्चोको मारने पर तुल गये हैं?
हे ईश्वर! क्या डाकू हैं ये लोग? अभी सबेरे वहाँ खिड़कीके पास वह खेल रहा था।
और उसके बाद उन्होने उसकी जान लेली।
वह गलीसे जा रहा था कि उन्होने उसे गोली मारदी।
वह ईसूकी तरह सीधा और भोला था।
मै बूढी हूँ, मेरे लिये मरना कुछ भी नहीं है।
मेरे बच्चेके बदले अगर वे मुझे मार डालते,
तो इसमे बोनापार्टके लिये क्या फरक आ जाता?
वह आँसुओंकी बाढके कारण रुक गयी।
दादीके पास बैठे हुए सभी लोग सुबकने लगे। फिर उसने कहा—
अब मे अकेले क्या करूँ?
आप सब भाई मुझे समझाओ, मै क्या करूँ।
हाय! उसकी माँ उसके और मेरे पास ज्यादा दिन न रही।
क्यो उन्होंने उसे मार डाला, कोई मुझे बता देता।
बच्चेने प्रजातंत्रकी जय नही बोली थी।
हम सब लोग गंभीर, हाथोंमे टोपियाँ लिये हुए चुपचाप खडे रहे,
हम उस ईश्वरके सामने काँप रहे थे जो उसे दिलासा न दे सकता था।
माँ! तू राजनीति नहीं समझती।
नैपोलियन!—यही उसका नाम है गरीब नहीं है, वह राजा है।
उसे महलोंसे क्या है, उसे घोडे और सईस चाहिये,
मेज अल्मारी चाहिये आखेटके लिये पशु चाहिये,
जुआ खेलनेको दौलत चाहिये
लेकिन इसके साथ ही वह धर्म, समाज और कुटुंबका रक्षक भी है।
उसे ग्रीष्मके उद्यान शोभा देते हैं जहाँ गुलाबके फूल खिलते हैं
और जहाँ उसकी अभ्यर्थनाके लिये पुलिसके प्रधान और नगरपति जाते हैं।
यही कारण है जिससे बूढी दादियोको अपने बूढ़ी झुर्री पड़े हुए हाथोंसे
सात-सात बरसके बच्चेको, कफन ओढा कर सुलाने पडते हैं।

४

लोग

अमृतराय

कल तेरही भी हो गयी थी। आज मातम पुर्सीके लिए आये हुए मेहमान विदा हो रहे थे। कृष्णबहादुर और उनकी पत्नी रजवंती आपसमे बात कर रहे थे।

रजवंतीने पास ही बैठी हुई पार्वतीको सुनाकर बहुत तेवरके साथ कहा—हमारे भी तो लडके वाले है .

कृष्णबहादुरके मुँहमे दही जमा हुआ था। थोड़ी देर तो उनके मुँहसे बोल ही न फूटा, फिर बहुत उधेडबुनमे पड़े हुए आदमीकी तरह सर खुजलाते खुजलाते दबी जबानमें बोले—देखो न घरमें जगह ही कितनी है!

रजवंतीने और गरम पडते हुए चमककर कहा—कितनी जगह हैं का ठेका हमने नहीं लिया है। हमारा भी इस घरमे हक है। और फिर जीजीको जगह चाहिए भी कितनी। घरमे खानेको कम होता है तो कोई भूखा तो नहीं न सोजाता, सब उसीमे बांट-चूटकर खाते हैं, कि नहीं खाते ?

कृणबहादुर इस अकाट्य युक्तिके आगे तुरत परास्त हो गये। पार्वतीके पास जाकर बोले—भौजी

पार्वतीने कहा—मैने सब बाते सुन ली है। प्रेमूकी मा ठीक ही कहती है। आखिर तुम्हारे भी तो लडकेवाले है।

पार्वती बरोठेमे खडी खड़ी अपने देवर देवरानीके इक्केको जाते बहुत देरतक देखती रही। इक्का ऑखसे ओझल होगया, उसके भी बहुत देर बाद तक। राधा, सीता, पुच्ची बरोठेके आगे नीमके नीचे खेल रहे थे। ढेबी ऊपरवाले कमरेमें था। बच्चोको आवाज देती हुई पार्वती घरके अंदर दाखिल हुई। नीचेवाली कोठरीमे देवर—देवरानीका अधसेरा अलीगढ़ी ताला लटक रहा था। दूरदर्शी कृष्णबहादुर और उनकी पत्नी गमीकी ख़बर पाकर आते समय शहरसे ही ताला लेते आये थे।

पार्वतीका मुँह न जाने क्यो एकदम कडवा हो गया, जैसे किसीने जबरदस्ती उसे नीमकी पत्ती पीसकर पिला दी हो। उसे दातोमे किसकिसाहट भी मालूम हो रही थी। शायद नीममे बालू भी मिली हुई थी।

आधी खाटके बराबर बरोठा, खाट डेढ खाटका आगन, एक खाट बराबर कोठरी और उसके ऊपर दूसरी कोठरी नीचेवाली ही के बराबर—यहीं वह घर है, जिसमे कृष्णबहादुरने अपना वखरा लगाया है। पार्वतीके ससुरने लड़ाईके पहले इसे तीन सौ

रुपयेमे खरीदा था। वे मरे तो उन्हें इस बातका संतोष था कि वे अपने दोनो लड़कोके लिए एक घर छोडे जा रहे है। जरूर उनकी अक्ल सठिया गयी थी, नहीं तो भला वे इस घरौंदेका इतना गुमान करते। और सच तो यह है कि इस घरसे पार्वती और राजाको उतना आराम नहीं मिला, जितनी तकलीफ। कृष्णबहादुर और रजवंतीको हमेशा यही डर बना रहता कि राजा कहीं पूरा मकान न हथिया ले। दोनो इस ओरसे इतने सतर्क रहते कि आखिरकार राजाको ऊबकर कानपुर चले जाना पडा। राजा कानपुर चला गया तो कृष्णबहादुर भी अलाहाबाद चले आये।

राजा कई बरस कानपुर रहा लेकिन वहाँ उसकी सेहत कभी ठीक न रही, और उसकी सेहत तो जैसी कुछ थी, थी ही, पार्वतीको हरदम खाँसी-जुकाम छेके रहता।

पानी बदलनेके खयालसे दोनो थोडे दिनसे सोराम चले आये थे।

२

अब पार्वती बिलकुल अकेली थी---जैसा कि आदमी मौतके दिन होता है। पर मौत भी उसे कहाँ पूछती। दूसरी चीजो ही की तरह मुँहमाँगी मौत भी तो मुँहताजोको नहीं मिला करती। अपने हाथसे वह अपनी जान नहीं ले सकती---बच्चोने वह आसान रास्ता बंद कर दिया है। उनको दुनियामे लानेकी जिम्मेवारी उसीकी है। उस जिम्मेवारीसे वह मुकरेगी नहीं, मुकर नहीं सकती, मुकरेगी तो वहाँ कौन मुँह दिखायेगी। लेकिन जिये भी तो कैसे, दुनिया जीने दे तब तो।

पार्वतीको ऐसा लग रहा था कि उसे एक अथाह सागरमे ढकेल दिया गया है जिसमें सब जगह बस हाथी बराबर पानी है, और जिसके कूल-किनारेका कहीं कोई पता नहीं। जिधर आँख उठाती है, उधर मीलोतक पानी, पानी, पानी। और पानी भी वह नहीं जो सहज ढगसे कल-कल करता बहता है, बल्कि घमंड, जोश और गुस्सेमे उबलता हुआ बेअख्तयार पानी जिसकी लहरे दो दो पुरसा ऊपर ऊठती है और फिर एक हुम्मके साथ सभी कुछ अपने पेटमे रख लेती है।

राजाकी मौतने पार्वतीको घरकी कोठरीसे निकालकर सड़क पर ला खड़ा किया। पार्वतीको लगा कि वह जिन्दगीमे पहली बार दुनिया देख रही है। अबतक तो कोई और उसकी ओरसे भी दुनिया देखा करता था। आज पार्वतीने दुनियाको देखा और पहचाना--जिन जीव-जन्तुओकी कल्पना करके वह डरा करती थी, उन्हे ही उसने जीवनके चौराहे पर आते जाते देखा। राजाकी मुहब्बतने अब तक उसे अँधेरेमे रखा था, अब वह प्रकाशमें थी, कितना निर्मम प्रकाश। थपेडे अब उसके शरीरपर लग रहे थे, वही थपेडे जिन्हे सहते सहते राजाके जीवनकी डोंगी डूब गयी, जिन्होने डोंगीकी चिप्पियाँ-चिप्पियाँ छितरा दीं।

पार्वतीके पास अब कुछ न था। जो कुछ गहना-गुरिया था, वह राजाकी बीमारीमें उठ गया। माथेका टीका जिसे वह पहले अपने सोहागकी निशानी समझकर बड़े जतन से रखे हुए थी, वह क्रिया-कर्ममे निकल गया। किसीने कानी कौडीसे भी मदद नही की। जब एक पेटके भाई-बहन अपने नही हुए तो दूसरेको बुरा भला कहनेसे फायदा। कृष्ण-बहादुरका तो भाई मरा था, फूलकुँअरका तो भाई मरा था, उसका काम अच्छी तरह हो, इसमें उनकी शोभा भी तो थी। लेकिन सब मुँहदेखेकी प्रीत करते है, आदमीकी ऑख मुँदी नही कि सबने ऑखे फेर ली जैसे कभीकी जान पहचान भी न हो। कृष्णबहादुर यह कहनेको तो हो गये कि भैयाका क्रियाकर्म अच्छी तरह होना चाहिए, लेकिन उसके लिए उन्होने एक रुपया भी जेबसे निकाला! भैयाका क्रियाकर्म अच्छी तरह होना चाहिए क्योंकि वे कृष्णबहादुरके भाई थे। लेकिन कृष्णबहादुरको इसकी कौन फिक्र पडी थी कि पता लगाते कि भौजीका हाथ कितना तंग है। सुनते है फूलकुँअरने अपने पतिसे बात चलायी थी लेकिन पति देवताने ऐसे कसकर डॉट बतायी कि बेचारी फूलकुँअर सिटपिटा गयी। उन्होने शायद कहा—तुम क्यों दुनियाकी पंचाइतमे पडती हो। तुम्हींको सबसे ज़्यादा भाईका प्यार उमडा है, कृष्णबहादुर तुमसे कम सगे हैं।

फूलकुँअरने फिर शायद जवाब देनेके लिए, अपनी बात समझानेके लिए मुँह खोला तो मुंसरिम साहब आग बबूला होगये, औरतकी यह मजाल कि अपने आदमीसे जबान लडाये। गरजे—चुप रहो। मैने तुम्ह हजार बार समझा दिया है नन्हेंकी अम्मा कि तुम मेरे मुँह न लगा करो, मुझे यह बात बिलकुल पसद नहीं। मुंसरिम साहब सोचने लगे थे कि उनके दफ्तरका वह अधेड मुंशी कितना समझदार है जो रोज रातको जूतोसे अपनी बीबीकी पूजा करता है!

अब राम जाने, फूलकुँअरने अपने पतिसे बात चलायी या सब गप्प है, पार्वती को कहींसे कुछ मिला नहीं। यो सुननेको तो यह भी सुना था कि कृष्णबहादुर ऐसे मक्खीचूस नहीं हैं कि एक पेटके भाईके दाहकरमके मामलेमे फिसड्डी रह जायॅ, लेकिन बेचारे क्या करे, रजवंतीके आगे उनकी एक नहीं चलती।

मान-इज्जतका मामला था, पार्वतीने अपना माथेका टीका बंधक रखा। जब वह उसे लेकर माता प्रसाद पटवारीके यहॉ जा रही थी तब उसके दिलमे आग जल रही थी। आग बहुत असह्य हो गयी तो ऑखोमे ऑसू छलछला आये। पार्वतीने मनमें कहा—उनकी बीमारीमे भूखे रहकर भी मैने इस टीकेको बचाया था . पर असली टीका जब नहीं बचा सकी, जब वही पुँछ गया तो इससे क्या हासिल? . लेकिन पार्वती तुम भूलती हो। भूल गयी उन्होने कितने प्यारसे तुझे ये चीजें लाकर दी थी, उस रात तू सोयी नहीं थी, इतनी मगन थी तू, वे भी नहीं सोये थे, वे तेरे मुॅह पर टकटकी लगाये जागते पड़े थे, तेरे बिस्तरमें, तेरी बगलमे उनका शरीर तुझसे छू रहा था। पार्वतीको एक झटका-सा लगा और भावधारा फिर चल पडी। उसके मुॅहसे स्फुट स्वर निकला

—हां आज उनका शरीर मुझे नहीं छू रहा है . अच्छा है यह टीका भी उन्हीके साथ स्वाहा होजाय। लेकिन तब उसे लगा कि वह अपने सग बहुत कठोर होती जारही है और उसने अपने आपको समझाया—इन्हे बेचने थोडे ही जा रही हूँ, मै बंधक रखकर रुपये ले आऊँगी, फिर रुपये होंगे तो छुडा लाऊँगी। मै भला इनको हाथसे जाने दूँगी! उसके भीतर कोई हँसा, उसके इस सरल आत्म-विश्वास पर, उसकी मूर्खता पर, फिर रुपये होगे तो—फिर रुपये होगे कभी? कौन देगा? कृष्णबहादुर? फूलकुँअर? कहाँसे आयेगे रुपये? पार्वतीका मन असीम खिन्नतासे कड़वा होगया। कुछ रुककर उसे ध्यान आया—देवी अब जल्दीही कमाने लगेगा। देवी हमारे दुख हरेगा, बंधक छुडायेगा। देवी डिप्टी होगा, साहब होगा। सब कहते हैं, देवी पढ़नेमे बहुत तेज है।

देवी पार्वतीका बडा लडका है। तेरह सालका है। कायस्थ पाठशालामे आठवीमे पढता है। अपर प्रायमरीसे लगभग सदा वजीफा पाता रहा है। उससे सबको बडी बड़ी उम्मीदे हैं। अपने ही बलबूतेसे वह पढा है, अपने ही बलबूतेसे वह कुलकी नाक रखेगा।

. .रखेगा जब रखेगा। अभी तो वह छोटा है।

३

आखिर करधनी बेचनेकी भी नौबत आगयी। पार्वती पहले कभी करधनी न पहनती थी, लेकिन पुच्चीके होनेके बादसे पहनने लगी। पुच्चीके होनेमे तो समझो उसके प्राण गलेमे अटक गये थे। पुच्ची पेट चीरकर निकाला गया था। उस वक्त तो खैर सब ठीकठाक हो गया, टॉके-वॉके लगा दिये गये, लेकिन तबसे हमेशा कमरमे दर्द रहने लगा। चीज-वस्त्र धरने-उठानेका कोई बडा काम करती या कुछ नहीं खाली पुरवा बहती, तो वह पूरा हिस्सा चिलक उठता, जैसे मोच खाया हुआ पैर उल्टा सीधा पड़ जाने पर चिलक उठता है। तभी उसकी एक सहेलीने उसे करधनी पहननेकी सलाह दी थी। उसके भी ऐसी ही तकलीफ हुई थी और करधनी पहननेसे ही उसकी कमरका दर्द गया था। लेकिन असलमे करधनी पहननेसे कमरका दर्द जाता नहीं, थमा रहता है। यही तो वजह है कि अब भी, यानी आप यह समझिये कि पुच्ची छ बरसका है, जब पार्वती करधनी उतार देती है तो कुछ घटोके बाद ही मीठा मीठा दर्द शुरू हो जाता है। इसी डरके मारे करधनी वह कभी उतारती नहीं।

लेकिन अपनी भूख और अपनेसे ज्यादा अपने बच्चोकी भूख करधनी तो क्या। आदमियत तक उतरवा लेती है। आखिरकार करधनी भी थोड़ेसे जौ-चनेके लिए माता प्रसाद पटवारीके यहाँ पहुँच गयी।

एक करधनीकी कमाई कै दिन चलती। आठ दस दिनमे खा पकाकर फिर वही भूखो मरनेकी नौबत।

एक रोजकी बात है। तहसीलदार सक्सेना साहब पार्वतीके घरके रास्ते जा रहे थे। वहीं नीमतले सीता पुच्ची वगैरह खेल रहे थे। उसी वक्त एक लैया करारी, गुलाबी पट्टी वगैरहका खोमचेवाला भी उधर आ निकला और लड़कोंको देखकर और भी जोर जोरसे चिल्लाने लगा। बच्चे तो फिर भी बच्चे, उनका जी ललचा। वे ललचायी आँखोंसे पासमें खड़े खोमचेवालेको तक रहे थे। सक्सेना साहबको उनपर तरस आ गया। पुच्चीको बुलाकार पूछा—लोगे ?

पुच्ची न हाँ कह सका, न ना, खामोश खड़ा रहा। सक्सेना साहबने दुबारा पूछा–पट्टी खाओगे ?

पुच्चीके मुँह पर तो ताला जड़ा हुआ था। लेकिन सीताने कुछ झिझकते हुए आखिर कह ही दिया—हाँ, कल सबेरेसे कुछ नहीं खाया है।

पुच्चीका चेहरा भी चमक उठा, अपने दिलकी बात वह जबान पर नहीं ला पारहा था, उसे सीताने कह दिया था।

सीताकी बातसे सक्सेना साहबको तमाचासा लगा· इतने जरा जरासे बच्चे भी भूखे रहते हैं ! फिर उनका अफसर जाग उठा—नही ऐसा नहीं हो सकता, मै ऐसा नहीं होने दूँगा।

खोमचेवालेसे बहुतसी चीजे सीताको दिलवाते हुए बड़े प्यारके साथ बोले—बेटी, तुम्हारी मा है ?

सीताने कहा—वह रही।

सक्सेना साहबने पीछे घूमकर देखा—पार्वती बरोठेमें खड़ी थी। चिन्तित, उदास बच्चे किससे बात कर रहे हैं, देखने निकल आयी थी।

पार्वतीके अपरूप सौन्दर्यने सक्सेना साहबको हक्का-बक्का कर दिया था।

अपरिचित आदमीको देखकर पार्वती लौट ही रही थी जब सक्सेना साहबने आवाज दी—जरा सुनिये।

पार्वती ठिठककर रुक गयी। सक्सेना साहब उसकी ओर आये और बोले—मै अभी हाल ही मे यहाँ आया हूँ इसलिए मुझे किसी चीजकी जानकारी नहीं है। आपके पति नहीं हैं ?

पार्वतीके नंगे हाथो, सूनी माँग, खाली माथे, अवसन्न मुखमुद्रा और खामोशीने मिलकर जवाब दिया—नहीं।

सक्सेना साहब अपने प्रश्नपर स्वयं ही लजाते हुए बोले—मै भी कितना बेवकूफ हूँ। ..मै आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ ?

पार्वतीने घुटी-घुटी आवाजमें कहा—जी नहीं, सब ठीक है। आपकी बड़ी मेहरबानी है।

सक्सेना साहबने कहा—ऐसा न कहिये। मुझसे अगर आपकी कोई मदद हो सके

पार्वतीने फिर कहा—आपकी मेहरबानी है। मुझे किसी चीजकी जरूरत नहीं है।

और अदर चली गयी।

सक्सेना साहब थोडी देर खडे रहे, फिर अपने मकानकी ओर चल पड़े। उनके अफसरी अभिमानको ठेस लगी थी। और जगह तो लोग हरदम हाथ बॉधे खड़े रहते थे, और आज एक औरत उन्हे दरवाजेपर खड़ा छोड़कर घरके अदर चली गयी। उन्हे लगा कि उनकी तौहीन हुई है लेकिन उन्हे विश्वास न हुआ कि इतनी दुखी औरत किसीकी तौहीन करनेकी सोचेगी।

बाबू चन्द्रिकाप्रसाद पेशकार सक्सेना साहबको बतला रहे थे, हुजूर मुसम्मात पारबती राजबहादुरकी बेवा है। अभी दो महीने हुए उसका शौहर मरा है। अच्छा लडका था, बहुत बाअदब, बहुत मुहज्जब। कायस्थोमे तो यह बात आम तौरपर पायी जाती है।

बाबू चन्द्रिका प्रसाद खुद कायस्थ थे, हाकिम कायस्थ था, मुसम्मात पारवतीका खाविन्द कायस्थ था, इससे अच्छा सुवर्ण सयोग और क्या हो सकता था, बस बाबू चन्द्रिका प्रसादने जड ही तो दिया।

उनकी चोट निशाने पर बैठी थी। सक्सेना साहबको हल्कासा नशा चढने लगा। बोले—अच्छा तो मुसम्मात पारवती कायस्थ है! साहब, बलाकी खूबसूरत है। आपसे क्या छिपाना आप भी तो कायस्थ है, हम लोगमे इतने खूबसूरत लोग मुश्किलसे मिलते हैं। हम तो उसे बिरहमन—छत्री समझे थे।

सक्सेना साहबको यह गवारा नहीं कि कोई उनकी बात काटे, लेकिन इस वक्त अपनी बात कटना उन्हें भला मालूम हुआ। कायस्थ कौमकी बडाई आखिरको उनकी बडाई भी तो थी, इसके अलावा यह सतोष भी कुछ कम न था कि मुसम्मात पारवती जैसी परी उन्हींकी क़ौमका एक रतन है।

अपने विचारोमे डूबे हुए सक्सेना साहब थोडी देर खामोश रहे, फिर बोले—पेशकार साहब, मै मुसम्मात पारवतीकी मदद करना चाहता हूॅ। बेचारी बहुत तकलीफ मे है

बाबू चन्द्रिकाप्रसादने कहना चाहा—जब हुजूरकी नजरे इनायत लेकिन सक्सेना साहबने बीचमे ही बात काट दी—वह सब कहनेकी जरूरत नहीं। हॉ, तो मै कह रहा था कि बेचारी बहुत मुसीबतमे है और मै उसकी मदद करना चाहता हूॅ। उसके लिए मै आसानीसे महीनेमे बीस पचीस रुपया निकाल सकता हूॅ लेकिन इसमें एक पेंच है पेशकार साहब।

पेशकार साहबने मामूलीसे ज़्यादा बुद्धू बनते हुए पूछा—वह क्या हुजूर ?

हुज़ूरने कहा—वह पेच यह कि अगर मै अपनी ओरसे मुसम्मात पारबतीकी मदद करूँगा तो यह जरा ठीक न होगा। आप तो जानते ही है, उँगली उठानेवालोकी कमी नहीं होती। मुसम्मात पारबती अभी जवान है, खूबसूरत है आप ही बतलाइये, लोग ऐसी-वैसी बाते न बकने लग जायँगे

बाबू चन्द्रिकाप्रसादको आज हाकिमके मनकी थाह नहीं लग रही थी। उनकी समझमे न आरहा था कि हाकिम आखिर चाहता क्या है और उससे क्या कहें कि वह एकदम खिल उठे। अनजान नाला पार करते समय आदमी लाठी लेकर चलता है और पैर बढानेके पहले आसपास लाठीसे थाह लेता चलता है जिसमें पैर किसी ऐसी जगह न पड जाय कि बस बाबू चन्द्रिकाप्रसादने भी अपनी पचास सालकी जिन्दगीमें बहुतसे अनजान नाले पार किये है। एक आज भी पार करना था। थहाते थहाते बोले—हुजूर, मर्दकी बदनामी

साफ आसमानमे जैसे यकायक बिजली कडकी। सक्सेना साहबने बाबू चन्द्रिका प्रसादको जोरसे डपटा—चुप रहिये, पेशकार साहब आपके आधेसे ज़्यादा बाल सफेद हो चुके हैं। इस उम्रमें ऐसी बात कहना आपको शोभा नहीं देता। यह मुझे बिलकुल मंजूर नहीं कि मेरी वजहसे किसी भले घरकी औरतकी इज्जतमे बट्टा लगे।

पेशकार साहबका चेहरा डरके मारे काला पड़ गया था। पैर काँप रहे थे। अपनेको बार-बार धिक्कार रहे थे, कैसी निगोडी बात मुँहसे निकाली। तभी उन्होने सुना, सक्सेना साहब कह रहे थे—पेशकार साहब, आप ऐसे आदमियोंकी फेहरिस्त बनाकर मुझे दिखाइये जो जरा खाते-पीते अच्छे हो।

पेशकार साहबने हाकिमके सामने बिछ-बिछ जाते हुए कहा—लीजिये हुजूर, अभी लीजिये, उसमे देर ही कितनी लगती है।

और कान परसे कलम निकाली और जेबमेसे दावात और फेहरिस्त बनाने बैठ गये।

सक्सेना साहबने कहा— फेहरिस्तमे आखिरी नाम मेरा होगा। मेरे नामके आगे पाँच रुपया लिख दीजियेगा। बाकी लोगो पर एक एक रुपया चंदा लगाइये।

फेहरिस्त बनकर तैयार हुई तो उसमें बाबू कुलदीप नरायण मुख्तार, बाबू रघुनाथ प्रसाद मुख्तार, बाबू शिवराज बली मुख्तार, बाबू कामता प्रसाद मुख्तार, मिस्टर लछमी नरायन वकील, ठाकुर यमराजसिंह रईस, ठाकुर हरनाम सिह रईस, मिस्टर वली उल्ला डाक्टर, मौलवी एहतराम हुसैन हेडमास्टर, शेख अबदुस्समद जमीदार, मुशी भगवती प्रसाद जमीदार, लछमन साव, बेचन साव, मंगली साव, राधेश्याम सराफ, रामदीन मिसर, बाबू चन्द्रिकाप्रसाद बड़े पेशकार और मिस्टर प्रेमरतन सक्सेना तहसीलदार—ये लोग थे।

सक्सेना साहबने बहुत गौरसे उसे एक दो बार पढा और कहा—आपने बहुत उम्दा फेहरिस्त बनायी है, पेशकार साहब। और मूँछो ही मूँछोमें मुस्कुराते हुए उसपर दस्तखत कर दिये। फिर एक लमहेकी ख़ामोशीके बाद बोले---अजी आपके यहा तो बेशुमार वकील, मुख्तार, डाक्टर और रईस—

बावू चन्द्रिकाप्रसादने हाकिमकी बातको बीच ही मे लोकते हुए कहा –बेशुमार, हुजूर बेशुमार खॉचियो यह कोई मामूली जगह है हुजूर, यहॉ तो शहर और देहातकी गंगा-जमनी वहती है--

लेकिन पार्वतीके लिए तो यह गंगा-जमुनी चार महीने बहकर ही न जाने किस रेतीले मैदानमे हमेशाके लिए खो गयी। सक्सेना साहबका तबादला तहसील मम्मनपुर हो गया। उनके जानेके साथ ही पार्वतीका सहारा भी चला गया। सभी दान-वीरोने निश्शंक होकर हाथ खींच लिया। अब उन्हे ऊपरसे कोई कोडे मारनेवाला तो था नहीं जिससे उनकी कोर दवती हो या जिसको खुश रखनेसे उनका कोई काम सधता हो, तो फिर क्या वे बेवकूफ थे जो वह बेकारका दान खाता खोल रखते जिससे किसी किस्मकी कोई प्राप्ति नहीं ? कोदो-सवॉ देकर वे थोडे ही न पढे हैं जो अपना भला-बुरा न समझते हो। जव तक हाकिमका दवाव था, तब तक बात दूसरी थी—पानीमे रहकर मगरसे बैर नही किया जाता, और फिर इतना ही क्यो इस सोलह गंडेके दानसे हाकिम अगर हमे दिलका बादशाह समझता है तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है। हाकिम अगर खुश हो तो एक नहीं, बावन ढॅगसे अपनी खुशी बतला सकता है। लेकिन अव तो वह बात न थी। हाकिम चला गया था, सूरत एकदम बदल गयी थी। ये लोग जिन्होने हजारो रुपया पानीकी तरह बहाकर और बरसो दिमागकी एडियॉ विसकर तालीम हासिल की थी, ऐसे सिडी नहीं थे कि किसी ऐरे गैरेकी रॉडको विठालकर खिलावे। उन्हे उससे फायदा ? और जव फायदा नहीं तो एक रुपया तो क्या एक कौडी भी हाथसे निकालना गुनाह है। और सो भी राजाकी दुलहिन के लिए ? सीधे मुँह बोलती तक तो है नहीं। अपनेको पद्मिनी, समझती है पद्मिनी।

समझती वह ख़ाक--पत्थर कुछ भी नहीं अपनेको, किसी तरह जी रही थी, लेकिन भले घरकी लडकी थी, भले घरकी बहू थी, यह जानती थी कि आदमीकी इज़्ज़त अपने हाथ रहती है। चौबिस घंटा जागकर पहरा दो तो बचती है, पलभरको बेख़बर हो जाओ तो लुट जाती है ! इसीसे पार्वती किसीसे न बोलती। कुछ औरतों से तो हॅस बोल भी लेती लेकिन मर्दकी छायासे भी भागती, गावके रिश्तेसे जो भाई-भतीजे लगते, मौसा-काका लगते, उन तकसे न बोलती। इसीसे लोग उसे रूप--गर्विता

समझते । पर बात यह न थी । पार्वती जानती थी कि तीन-तीन शापोका बोझा ढोनेके लिए उसे दुनियासे बिलकुल अलग होना पड़ेगा। पहला शाप कि औरत हुई, दूसरा शाप कि विधवा हुई, तीसरा शाप कि सुन्दरी विधवा हुई। कुल अनर्थके ग्रह एक ही जगह तो इकट्ठा हो गये थे। किसीको लाञ्छित करनेमे समाजको रस आता है, और लाञ्छनाकी पात्री अगर एक युवती सुन्दरी विधवा हो, तब तो फिर क्या पूछना, उसके मुँहसे मानो राल टपकने लगती है। हमारे समाजमें विधवाके लिए लाञ्छनाका सदाव्रत खुला रहता है, समाज मुक्तहस्त होकर दान करता है, जिसको जितना लेना हो, जो जितना ढो सके ।

पार्वती क्या देखती नहीं, उसके क्या ऑखे नहीं है, वह क्या अंधी है कि इन्हीं दानवीरोमें कई लोग जिनके घरोमे बीबियॉ है, जिनके चार-चार पॉच पॉच बच्चे हैं, जिनके बाल खिचड़ी हो चले है उससे बहुत बहुत आशाएँ रखते है। वह सब जानती है, इसीलिए मानसकी गंधसे भागती है।

लेकिन तब फिर दानवीरोको भी कोई दोष नही दे सकता। बट्टे खातेमे कोई कहॉ तक दान दे !

और कुल बातका लुब्बे लुवाब यह कि अब पार्वतीको महीनेमे बाइसकी जगह चार रुपया मिलता है--बाबू शिवराज बली मुख्तार १), मुंशी भगवती प्रसाद जमीदार १), मौलवी एहतराम हुसैन १), डाक्टर वली उल्ला १)। इसीमे खाये-पकाये, जो चाहे करे

एक बार फिर पार्वतीके घर फाके होने लगे। लेकिन तभी एक बड़ा अच्छा सुयोग हाथ लगा। बाबू कुलदीप नरायन, मुंशी भगवती प्रसाद और मिस्टर लछमी नरायनके यहॉ एक साथ रसोई बनानेवालीकी जरूरत हुई—सबकी घरवालियोका प्रसवकाल समीप था। सभी कचहरिया लोग, वक्त पर खाना मिलना ही चाहिए और घरकी औरते असमर्थ, हमेशा किसी न किसी तकलीफमे गिरफ्तार। लाचार उन्हे किसीको रखना ही पड़ा। और इस तरह पार्वतीने तीन घरोकी रसोई थाम ली। इतना काफी था। सबका पेट भर जाता था।

. लेकिन यह चीज आखिर कितने दिन चलती। दो चार दिनके फेरफारसे सबके बच्चे हो गये और पन्द्रह बीस दिनमे फिर सबने अपना अपना मोर्चा सँभाल लिया। डेढ दो महीने अपने पौरुखसे अपना पेट भरनेके बाद पार्वती फिर असहाय थी। उसके सामने फिर भूखकी गुफा मुँह बाये खड़ी थी।

तब पार्वतीको बाबू सोमेशचन्द्रका ध्यान आया। बाबू सोमेशचन्द्र राजाके सहपाठी रह चुके थे। फरिक एकसे लगाकर उर्दू मिडिल तक गॉवमे, फिर हाईस्कूल तक शहरमे। उसके बाद राजाको अलाहाबाद छोड़ना पड़ा। बाबू सोमेशचन्द्र और राजामे पटती भी बहुत थी। बाबू सोमेशचन्द्र, भगवती प्रसाद जमींदारके लड़के थे और राजा एक मुहर्रिर

का। दोनोमें बडी मेल-मुहब्बत थी। धीरे-धीरे पार्वती और सोमेशकी पत्नीमें भी वहुत दोस्ती हो गयी। इसीलिए अपने इस सबसे गाढे समयमें उसे सबसे पहले सोमेश की पत्नीका ध्यान आया। वह शहरमें रहती है, बड़े बडे लोगोमे उसका उठना-बैठना है, वह जरूर कोई न कोई उपाय निकालेगी। यह सोचकर उसने सोमेशकी पत्नीको लिखा—

वहन,

वडी मुसीवतमे पडकर आज तुम्हारे सामने हाथ फैला रही हू। आज मेरी रोटीका कोई सहारा नही है। नेक तहसीलदार साहवके दवावसे जो लोग एक एक रुपया महीना देते थे, उन्होंने भी हाथ खीच लिया है और अव मेरे लिए मरनेके अलावा दूसरा रास्ता नही है। लेकिन चार बच्चोंको इस हत्यारी दुनियाके भरोसे छोडकर मरते भी डर लगता है।

तुम्हे पता चला ही होगा कि मैंने कुछ दिन तुम्हारे यहाॅ और वावू शिवराजवली और वावू कुलदीप नरायनके यहाॅ रसोई भी पकाई लेकिन फिर घरकी औरतोके सौरीसे निकल आनेपर मेरा वह सहारा भी जाता रहा। अब तुम्हें लिख रही हूँ। अच्छे अच्छे लोगोंसे तुम्हारी रसाई है, मेरे लिए कही किसी कोनेमे जगह न निकालोगी? खाना पकाऊंगी, बच्चोंकी निगरानी रखूॅगी और गिरस्तीके और भी जो मोटे झोटे काम होंगे, सव करूगी—मुझे अब कोई लाज शरम नही है। मैं गोश्त-मछली, अडा-मुर्गीके कभी पास नहीं गयी। मुझे ऐसी चीजोंसे हमेशा घिन लगती रही है, लेकिन मैं अव वह सव पकानेको भी तैयार हूं। तकलीफ पडनेपर आदमीको सभी कुछ करना पडता है वहन, ठसा दिखानेसे काम नहीं चलता। मैं तो वस किसी भलेमानस के घरमे एक कोठरीमें रहकर जिन्दगी गुजार देना चाहती हूँ, बस इतना चाहती हूँ, कि मेरे छोटे छोटे लडके वडे हो जायॅ। वहन, मुझ विपतकी मारीकी रच्छा करो। मेरे अपने जो थे पराये हो गये। वावू किसुन वहादुर, मेरे देवर, एक पाईके देनदार न हुए। वरसातमें घर चूने लगा था, मैंने उन्हे सॅदेशा भिजवाया कि घर चूने लगा है आकर मरम्मत करा जायॅ, मेरेपास पैसे नहीं हैं, नही मैं ही उसकी मरम्मत करवा लेती। जानती हो उनका क्या जवाव आया—घरके ऊपरी हिस्सेसे हमे कोई मतलव नही, वह चाहे रहे चाहे जाय। देवरानी जी तो और विपकी गाठ हैं। ववी (फूल कुँअर) तो कुछ करना भी चाहती है लेकिन अपने दुलहेके आगे उनकी एक नहीं चलती। और वह एक नवरका मक्खी चूस है। मै तो जान गयी कि दुनियामें कोई किसीका नही होता, सव हित नेत देखनेके हैं।

—पार्वती

जिस दिन सोमेशकी पत्नीको पार्वतीका खत मिला, उसी दिन बनारससे उसकी देवरानी श्यामा आयी थी। कोई नहान पड़ा था जिसमे प्रयाग नहानेका ही खास महातम था। श्यामा नेम-धरमकी बडी पक्की थी। इतनी कम उमरसे ही उसने ये तमाम व्रत नहान कैसे गह लिये, पता नहीं, लेकिन थी वह बहुत पक्की। लेकिन बस इसीमे पक्की थी वह। बाकी तो न घर साफ रखनेका सहूर, न गिरस्ती चलानेका, न बच्चोको नहलाने-धुलानेका—और होनेको तो परमात्माकी दयासे उनके छ बच्चे थे। और बच्चे कैसे, दुनियासे न्यारे। बुरी तरह शैतान, गाली बकनेवाले, बात बात पर एक दूसरे

का मुँह नोचनेवाले। दिनभर सब आपसमें मारपीट करते और पिन-पिन रोते। घर एकदम बिनबिनाया करता, कोई चीज ठिकानेसे रक्खी न मिलती और कूड़े करकटका घरमें अटम लगा रहता—वह गंदगी, वह शोर-गुल, गाली-गुफ्ता, मारपीट, खुदाकी पनाह।

श्यामा कुछ तो स्वभावसे ही गुस्सैल और चिडचिडी थी, अब इस जिन्दगीमें पडकर और भी हो गयी थी।

सोमेशकी पत्नीने सोचा—अकेली जान, बेचारी कैसे इतने बच्चोंको सँभाले, इसी मारे घर अलग अपने नामको पडा रोया करता है। इसके साथ अगर कोई औरत रहने लगे तो इसे बडा सहारा हो जाता। तभी पार्वतीकी चिट्ठी मिली। राजाकी दुलहिन घर गिरस्तीके काममें कितनी निपुण है, यह सोमेशकी पत्नीसे छिपा न था। गरीबीमें यो भी फूहड़पनके लिए कम गुंजायश रहती है, यही सब समझकर उसने श्यामासे बात चलानेकी सोची।

—राजाकी दुलहिनको तो तुम जानती होगी, प्रकाशकी अम्मा?

—वही सोरामवाली?

—हॉ

—तो?

—तुम जानती ही होगी, उसका आदमी मरगया?

—हॉ, वह तो तभी सुना था।

—बेचारी आजकल बडी तकलीफमें है, रोटीके लाले पडे हुए हैं, चार बच्चे भी हैं उसके। एक तो खैर वजीफा पाता है और यहीं कायस्थ पाठशालेमे पढता है। तीन छोटे-छोटे बच्चे उसके साथ है। उन्हींको पालनेका मोह उसे जिन्दगीसे चिपकाये है।

अब श्यामाको लगा कि कहानी जरा दूसरा रग पकड रही है। बोली—माका हृदय ऐसा ही होता है जीजी और जो आराम तकलीफकी बात कहो, तो जिन्दगीमे किसे आराम है। अब मुझीको देखो। तुम्हारे लाला इतने अच्छे आदमी हैं। परमात्माकी बरक्कतसे घरमें किसी चीजकी कमी नहीं है खाने-पीनेसे लेकर पहिनने ओढ़ने तक, जावत् चीज सब घरमे भरी पडी है। कुछ लोगोको भगवान् धन दौलत तो देता है लेकिन उसका भोगने वाला नहीं देता, मा बाप सन्तानका मुँह देखनेके लिए तरस जाते है, मान मनौती करते है, तीरथ नहान करते हैं, हरसू बरम जाते है, सब करते है, लेकिन सन्तानका मुँह देखना उन्हें नहीं नसीब होता। करमफलमे ही जब सन्तान नहीं तो आएगी कहॉसे बोलो? ..भगवान्की दयासे हमें सन्तानका सुख भी है, तुम्हारे बच्चे खेल रहे है। लेकिन तब भी मेरा जीवन क्या सुखी है? अरे राम कहो, वही हरदमकी हाय-हाय। इसीसे तो गियानी लोग संसारको दुखकी गठरी कहते हैं।

इस लंबी वक्तृताने सोमेशकी पत्नीके पैर उखाड दिये थे। पर राजाकी दुलहिन का उदास चेहरा उसकी ऑखोमें घूम रहा था। और उसने यह भी देखा कि भगवान्की

दयासे श्यामाकी कोख फिर फलनेवाली है, मुमकिन है, उसे इस वक्त किसी मददगारकी जरूरत मालूम पड़े। उसने फिर हिम्मत की। --तुम उसे अपने यहा क्यो नहीं रख लेतीं? खाना भी पकायेगी, बच्चोकी देख भाल भी करेगी, और जो काम बताओगी करेगी पड़ी रहेगी। उसे तो बस खाने कपडेसे मतलब है, ऊपरसे दो तीन रुपया भी दे दोगी तो बहुतहै।

श्यामाने थोडा इतराकर, थोड़ा मटककर कहा--राजाकी दुलहिन रहेगी तो मै अपने हाथसे पानी लेकर न पियूँगी।

सोमेशकी पत्नीको लगा जैसे किसीने उसकी नाकपर घूँसा मार दिया, थोडी देर को उसका होश जैसे खो-सा गया। दूसरे ही क्षण सारी बात उसके आगे दर्पनकी तरह साफ थी--श्यामाके यहा किसी स्वाभिमानी औरतकी गुजर नहीं थी। उसने बस इतना कहा-- जाने दो, मैने तो यो ही कहा था।

४

शामके चार साढे चार बजे होंगे। शहरसे लारी आगयी थी। पार्वतीका बडा लड़का देवी लारीसे उतरकर घर पहुँचा। राधा, सीता, पुच्ची कोई नहीं दिखायी दिया। यो वे उसे हमेशा नीमके नीचे खेलते मिला करते थे। घर खुला हुआ था, नीचेवाली कोठरीमे चाचाजीका अधसेरा ताला लगा हुआ था, पैसोसे हीन जीवनकी तरह अचल, पैसेवालोंकी तरह क्रूर। देवीकी मा बरोठेमे नहीं थी, आगनमे नहीं थी। देवीका माथा ठनका। उसने कई बार आवाज दी, अम्मा, अम्मा। कोई जवाब नहीं। देवीने सोचा, अम्मा ऊपरकी कोठारमे होगी। कपडा-वपड़ा सीनेका कुछ काम मिल गया होगा। वह जगह जगहसे दरकी हुई और एकदम खंभेकी तरह खड़ी सीढी पर सँभाल सँभालकर पैर रखता हुआ ऊपर पहुँचा। कोठरी मे दरवाजा बंद था। देवीने फिर आवाज दी, अम्मा अम्मा, लेकिन कोई जवाब नहीं। तब उसने जोरसे दरवाजा भडभडाना शुरू किया। दरवाजा खुला। माको पत्थरकी मूर्तिकी तरह निश्चल खड़ा देखकर देवीने कोठरीमे घुसते हुए कहा--तुम्हें क्या होगया है अम्मा, तुम बोलतीं क्यो नहीं?

पार्वती फिर भी कुछ न बोली, उसकी आँखसे आँसू अलबत्ता झरने लगे। और फिर वह खड़ी न रह सकी, उसे गश आ गया। तेरह सालके देवीने मांको गिरने से बचाते हुए देखा--

छतकी कड़ीसे अम्माकी बटी हुई धोती रस्सीके समान झूल रही थी। धोती जहाँ खत्म होती थी वहीं पर अपटु हाथोंने गाठ लगाकर फंदा बनाया था. .

तेरह सालके लड़के देवीने यह दृश्य देखा और उसी वक्त मर गया। जो आदमी अपनी माँका सिर गोदमे लेकर उसके छोटेसे, पीले, मुर्झाये हुए चेहरे पर पानीके छीटे मार रहा था, वह देवी नहीं, तैंतालिसका एक अधेड आदमी था

देवी माँके चेहरे पर पानीके छींटे मार रहा था और सोच रहा था—यहाँसे सिर्फ पन्द्रह मील दूर चाचाजी और बुआ रहती हैं। मैंने अपनी आँखोंसे उनके घरको, उनके बच्चोंको उनके रहन-सहनको देखा है। यहीं इसी गावमे न जाने कितने वकील, डाक्टर, मुख्तार, रईस, जमीदार रहते है—

इसके आगे ही असली रुकावट थी। देवी सिर हिला-हिलाकर यह माननेसे इन्कार करता था कि सभी आदमियोंके दिलोंपर भिश्तीकी मशकवाली मुर्दार खाल मँढी हुई है। लेकिन उसका सिर हिलकर भी न हिलता था, क्योंकि उसकी गोदमे अपनी बेहोश माँ का सिर था और एक गजसे कम दूरीपर धोतीका फाँसीनुमा फंदा लटक रहा था—पतली, कोनोपर मुड़ी हुई, लालटेन टाँगनेवाली वाली काली सलाखकी तरह।

रनिया

केदारनाथ अग्रवाल

१

रनिया मेरी देस बहन है
अति गरीब है—अति गरीब है
मै रनियाका देसबन्धु हूं
अति अमीर हू—अति अमीर हू

२

रनियाके करमे हँसिया है
घास काटनेमे कुशला है
मेरे हाथोंमे रुपिया है
मै सुख-सौदागर छलिया हूं

३

रनिया अब तक जन्मान्तर से
ज्योंकी त्यों पूरी भूखी है
मै जन्मान्तरसे वैसा ही
रोज़ रोज़ छक कर खाता हू

४

रनिया बिल्कुल वही वही है
चिरकुट ही चिरकुट पहने है
मैं भी बिल्कुल वही वही हूं
रेशम ही रेशम पहने हूं

५

रनिया मेरी दुखी बहन है
वह निदाघमे मुरझ रही है
मै रनियाका सुखी बन्धु हूं
चिर-बसन्तमे विहँस रहा हूं

६

मै औ' रनिया एक देसकी
एक भूमिकी, एक कुंजकी
एक रंगकी, एक रूपकी
रोती हँसती दो कलियां हैं

७

रनिया कहती है जग बदले
जल्दी बदले, जल्दी बदले
मैं कहता हू कभी न बदले
कभी न बदले, कभी न बदले

८

किन्तु आज मेरे विरोधमे
सारा हिंदुस्तान खड़ा है
अब रनियाके दिन बहुरे है
जग उसके माफिक बदला है

'मुसद्दस' और 'भारत-भारती' की सांस्कृतिक भूमिका—१

शमशेर बहादुर सिंह

" कौमके लिये अपने बेहुनर हाथोंसे एक आईनाखाना बनाया, जिसमें आकर वह अपने खतो-खाल देख सकते हैं कि हम कौन थे और क्या हो गये।"

—हाली ('मुसद्दस' की पहली भूमिका)

" आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी,
हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी।"

—मैथिलीशरण ('भारत-भारती')

'भारत भारती' हिन्दीमे हिन्दुओके लिये बीसवी सदीके प्रारम्भमे हालीके कौमी 'मुसद्दस' की कमीकी—एक सास्कृतिक माँगकी—पूर्ति है, जैसा कि इसकी रचनाका कारण बताते हुए स्वय मैथिलीशरणजी भूमिकामे लिखते हैं

" बडे खेदकी बात है कि हम लोगोके लिये हिन्दीमे अभी तक इस ढगकी कोई पुस्तक नहीं लिखी गयी जिसमे हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनतिका वर्णन भी हो और भविष्यत्के लिये प्रोत्साहन भी। देशवत्सल सज्जनोको यह त्रुटि वहुत खटक रही है। ऐसे महानुभावोमे श्रीमान् राजा रामपाल सिहजी, सी. आई ई महोदय हैं।

"कोई दो वर्ष हुए मैने '**पूर्व दर्शन**' नामकी एक तुकवन्दी लिखी थी। उस समय चित्तमे आया था कि हो सका तो कभी इसे पल्लवित करनेकी चेष्टा भी करूँगा। इसके कुछही दिनो बाद उक्त राजा साहबका एक कृपापत्र मुझे मिला जिसमे श्रीमान्ने **मौलाना हालीके मुसद्दसको** लक्ष्य करके एक कविता-पुस्तक हिन्दुओके लिये लिखनेका मुझसे अनुग्रह-पूर्वक अनुरोध किया। ."

'भारत भारती' सन् १९१३मे प्रकाशित हुई।

वास्तवमे 'भारत भारती'की प्रेरक शक्तियोके पीछे एक युग विशेषकी सस्कृतियाँ थीं। उस समयकी परिस्थितियोका जन्म उस आन्दोलनसे हुआ था, जिसको दो-तीन पीढियाँ बीत चुकी थी, जब एक ओर राजा राममोहनराय (१७७२–१८३३), ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०–९१) केशवचन्द्र सेन (१८३८–८४), आदि समाज सुधार-सम्बन्धी प्रचार-कार्य कर रहे थे, और दूसरी ओर बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब और पश्चिमी

युक्त प्रान्तमे रामकृष्ण परमहंस (१८३६–८६) स्वामी विवेकानन्द (१८६२–१९०२), स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८३४-८३) और स्वामी रामतीर्थ का धार्मिक-आध्यात्मिक पुनरुत्थानवादी प्रचार बढ रहा था।

अस्तु, उन्नीसवी शताब्दीमे प्रचलित धर्म-सम्बन्धी बहुतसे नये दृष्टिकोग मैथिली शरणजीके समय तक हिन्दू जनताके संस्कारमें घुल-मिल गये थे। इस प्रकार, 'भारत भारती' के प्रणेताको जिस युगका वातावरण मिला, वह था पंजाब और पश्चिमी युक्त प्रान्तमे आर्य समाजी प्रचार-कार्यका उत्तरार्ध। हिन्दुओमे चारो ओर "वैदिकयुग" और "आर्यसभ्यता" की गूँज सुनायी पड़ती थी।

बहुत कुछ मनुस्मृतिका "सनातनी" पक्ष भी लिये हुए एक प्रगतिशील समन्ययके रूपमें 'भारत भारती' उसीकी भावुक प्रतिध्वनि है।

कविकी आदर्श समाज-कल्पनाका आधार रामायण-महाभारत-कालीन चातुर्वर्ण्याश्रम है।

हिन्दू समाजके चारों वर्णोंमे जो दोष पैदा हो गये है कवि चाहता है वे दूर हो जायँ, पर वह यह भी चाहता है कि वह व्यवस्था आजकी परिस्थितियोके अनुकूल बनकर अपनी पूर्व मर्यादाको अक्षुण्ण रखे।

'मुसद्दस' और 'भारत भारती' दोनो अपने वर्ण्य विषय और उद्देश्यमे समान है, पर भिन्न "देश-काल" के प्रभावसे उनके निहित दृष्टिकोण और भावनाओके रूपमें कुछ अन्तर आ गया है, मौलिक अन्तर।

हिन्दीमे हालीका समानान्तर साहित्यिक वास्तवमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है। दोनोकी प्रेरक शक्तियाँ वे दो उपरोक्त सुधारवादी सास्कृतिक आन्दोलन हैं जिनके प्रतीक रूप राजा राममोहन राय और (उनसे लगभग ३० वर्ष बाद) सर सैयद अहमद माने जाते हैं। हिन्दुओ और मुसलमानोंकी राजनीतिक-सास्कृतिक नवचेतनामे यह तीस-पैंतीस वर्पका अन्तर हमारी बहुतसी राष्ट्रीय, साम्प्रदायिक और सास्कृतिक समस्याओंके मूलमे है। अस्तु।

हाली और भारतेन्दुजीके समयमें सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय जागरणकी नव-युगीन चेतना, पंजाब और युक्तप्रान्तमे अपने तीव्रतम रूपमे उभरी हुई थी। इन दोनों महान साहित्यकारोका गद्य और पद्य उस युगकी पूर्ण स्फूर्ति लिये हुए है। उस युगकी विचारधारामे अपनी भाषाओंके ये दोनों प्रथम और अग्रणी खेवा हैं। एक ओर हालीका मुसद्दस और उनकी मस्नवियाँ, दूसरी ओर भारतेन्दुजीके नाटक सहज ही देशमें उठती नयी जातीय राष्ट्रीयताको व्यक्त कर रहे थे।

मध्यवर्गकी सामाजिक शक्तिका वह उठता युवाकाल था। हाली और भारतेन्दुकी भावनाओमे, उसे पहले-पहल अपने अस्तित्वका बोध और अनुभव हुआ।

मैथिलीशरणजीके वयस्क होने तक यह अनुभव सस्कार रूपमे परिणित हो चुका था और नयी धार्मिक-सास्कृतिक मान्यताएँ बहुत-कुछ स्थिर हो चुकी थी ।

'मुसद्दस' की तो पहले-पहल बाज मुस्लिम हलकोमे उपेक्षा भी की गयी थी, पर 'भारत भारती' की—मुसद्दसके एक बृहत्, सुपरिवर्द्धित, "आर्य" सस्करणकी—तो, अब शुरूसे ही मॉग थी, एक प्रतिभाशाली उत्साही युवक कवि द्वारा उसकी पूर्ति सहज ही सम्भव थी, और मैथिलीशरणजीने सत्ताइस वर्षकी आयुमे सुचारु रूपसे वह कार्य सम्पन्न कर दिया, और प्रकाशित होते ही उसकी चारो ओर धूम होगयी ।

वस्तुत दोनो कवियोके निहित दृष्टिकोण और भावनाओके रूपमे हम उनके समयका प्रभाव स्पष्ट देखते है ।

'मुसद्दस' मे आरम्भसे अन्त तक हालीकी सारी चिन्ता वर्त्तमानके ही विषयमे है । भूतकालीन 'चारित्र्य' 'विद्या' और 'वैभव' का उत्कर्ष, पग-पग पर वर्त्तमानकी अधोगति, मुस्लिम जातिको सीधे-सीधे शब्दोमे स्पष्ट उपदेश आरम्भ हो जाते है मुसद्दसके ऐतिहासिक अशको शिक्षाप्रद बनानेका, हर उदाहरणमे वर्त्तमानके लिये उसकी उपयोगिता ढूँढने का दृष्टिकोण बन्द-बन्दमे, पद-पदमे अपना प्रमाण देता चलता है । शिक्षा, उद्योग और पुरुषार्थके आदर्शोंपर जोर देकर—जातिको उठाकर, किस प्रकार उसको देशकी अन्य प्रगतिशील जातियोके समकक्ष लाया जाय मात्र यही हालीकी चिन्ता थी । यह चिन्ता हालीके पूरे युगकी चिन्ता थी, उस युगकी जो नवीन शिक्षा-आन्दोलनका युग था, बड़ी सास्कृतिक-हलचलोका युग था । हालीका पाठक उस चिन्तासे स्वयं भर उठता है।

सन् १८७९ मे हालीके समयमे अंग्रेजोके प्रति लोगोके हृदयमे उतनी कटुता नहीं थी । विक्टोरिया शासन-कालमे हाली देखते है कि "राजासे परजा तलक सब सुखी है।" अपने मुसद्दसमे वह मुसलमानोसे कहते है

> हुकुमतने आजादियॉ तुमको दी है,
> तरक्कीकी राहे सरासर खुली है,
> नही बन्द रस्ता किसी कारवॉका"
>
> —पृष्ट ८० [ताज सस्करण]

लेकिन गुप्तजीके कालमे राष्ट्रीय आन्दोलन काफी विकसित हो चुका था। वंग-भंग, और स्वदेशी आन्दोलनके रूपमे साम्राज्यवाद-विरोधी भावना तीव्रतर होती जा रही थी । पर, मैथिलीशरणजीने लगभग हालीके ही स्वरमे स्वर मिलाकर जब कहा कि :

> देते हुए भी कर्म-फल हम पर हुई उसकी दया।
> भेजा प्रसिद्ध उदार जिसने ब्रिटिश राज्य यहॉ नया ॥
>
> —भा० भा०, पृष्ठ ८०

तो वह अपने समयकी प्रगतिसे पीछे पड गये जान पडते है ।

बार बार और ध्यानसे 'भारत भारती'को पढ़ने पर जो भाव मुख्य रूपसे हृदयपर जमता है वह अपने प्राचीन गौरवका है—इसके बावजूद कि इस काव्यके तीन खण्ड हैं अतीत, वर्त्तमान और भविष्यत्, फिर भी सम्पूर्णका भाव लेकर देखे तो भविष्यत् मानो अतीतका ही प्रतिदर्पण है, और वर्त्तमान उस अतीतका न होना, जिसकी भविष्यमे आकाक्षा है । मै अपना यह मत स्पष्ट करना चाहता हूँ कि कविकी मूल भावनाएँ अतीतसे जितनी बँधी हुई है, **उतनी** वर्तमानसे नही, यद्यपि 'भारत भारती मे वर्तमान खण्ड, विषयकी दृष्टिसे हिन्दी काव्यमे अभी तक आप अपनी मिसाल है फिर भी, अतीतकी समाज-व्यवस्था कविको इस हद तक मान्य है कि वह परोक्ष रूपसे साधु, सन्त, महन्त, तीर्थ-गुरु, पण्डा आदिका औपयोगिक महत्त्व ही नही स्वीकार करता बल्कि उस चतुर्वर्ण व्यवस्थामे, (मसलन), शूद्रोको भी उसी प्रकार अपना सेवा-धर्म पालन करनेका उपदेश देता है (पृष्ठ १६९-७०), जैसे कि अपने वर्णोंकी मर्यादा रखते हुए कर्म करनेका उपदेश यथाक्रम कविने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको दिया है । ऐसा सामाजिक दृष्टिकोण उचित था या नही—यह प्रश्न यहाँ नही उठता बल्कि जिस चीजको मै स्पष्ट करना चाहता हूँ वह यह है कि यह दृष्टिकोण, मूलत सुधारवादी, भावनामे रोमाटिक रूपसे अतीतानुरागी था ।

हम देखते हैं कि 'भारत भारती'मे कविकी भावुकता और भावनाओकी आधार-भूमि आगेकी समस्त कृतियोके लिये सीमित होगयी है । 'भारत भारती' कविके भविष्यके लिये एक स्पष्ट दिशा इंगित कर देती है । मानो अतीतमे ही हमारे स्वर्णादर्श है, अतीतमे ही "राम राज्य' है—स्वर्गिक कार्य-कलापोका स्वप्न-लोक, वह 'कार्य-भूमि', अयोध्या नहीं, साकेत है · हमारे उसी अतीतके स्वप्न जो इन आगामी रचनाओमे कृतिबद्ध होते चले गये है **'जयद्रथ-वध'**, **'हिन्दू'**, **'गुरुकुल'**, **'साकेत'**, **'यशोधरा'**, **'द्वापर'**, **'सिद्धराज'**.. । चौबीस वर्ष बाद भी कवि कहता है .

मुझपर चढनेसे रहा, राम ! दूसरा रग'

—द्वापर

समय अपने साथ बहुतसे नये अनुभव लाया, सब अन्ततोगत्वा उसी अतीत गौरवकी महत् भावनामे मिल गये । राष्ट्रीयताकी नयी चेतना, सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी भावना, उसके नैतिक-राजनीतिक आधार, सत्य और अहिंसा, चर्खा और खादी —गाधीवादके ये सभी आदर्श कविने अपनाये । यहांतक कि समयके प्रभावसे 'रहस्यवाद' की छाप भी कविके भक्त हृदयने किंचित ग्रहण की, पर इन सबको उसने अपनी उसी पुरातन-मुखापेक्षी जातीयमूलक-सुधारवादी राष्ट्रीयताके रगमे रँग लिया, और उस रगमे वय क्रम के साथ भक्तिकी व्यञ्जना और रुढ होती गयी ।

ऊपर हम देख चुके है कि एक ओर 'भारत भारती' का कवि ब्रिटिश शासन सम्बन्धी विक्टोरिया-युगीन धारणाओको नहीं छोड़ सका था, और दूसरी ओर उसको चतुर्वर्ण व्यवस्थाके प्रति रूढिवादी मोह था, जब कि 'भारत भारती 'का युग इन प्रवृत्तियो को पीछे छोडता जा रहा था।

'भारत भारती' के कविने, फिर भी, अपने युगकी कई प्रवृत्तियोको एक सबल और अनुप्रेरक रूप दिया, यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता थी, और इसी कारण वह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। जब कवि कहता है :

शासन किसी पर-जातिका चाहे विवेक-विशिष्ट हो,
सम्भव नही है, किन्त जो सर्वांशमे वह इष्ट हो :
यह सत्य है, तो भी ब्रिटिश शासन हमे साम्मान्य है,
वह सुव्यवस्थित है, तथा आशा प्रपूर्ण-वदान्य है।

तो इस उक्तिमे स्पष्ट ही दासताका विरोध भी, यद्यपि वह दूसरी भावनाओसे सीमित है, हम पाते हैं।

'भारत-भारती'के कविने राष्ट्र और उसकी पराम्पराओका दिग्दर्शन कराया, और उसे प्रेम करनेके लिये हिन्दी ससारको अनुप्रेरित किया, यह देश-प्रेमकी सबसे पहली सीढी है।

भूलोकका गौरव, प्रकृतिका पुण्य लीलास्थल कहां ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहॉ।
सम्पूर्ण देशोसे अधिक किस देशका उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि-भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।

इन पक्तियोको पढकर किस भारतीयका हृदय अभिमानसे न भर उठेगा? 'भारत-भारती'का कवि इस देशकी पीड़ित और दुखी जनतासे प्रेम करता हैं: किसको न याद होगे कृषकोके जीवन पर वे कितने ही पद—

बरसा रहा है रवि अनल, भूतलतवा सा जल रहा !

आदि, जहॉ रह-रहकर बार-बार यह मार्मिक भाव प्रश्न बनकर उठता है

किस लोभसे वे आज भी लेते नहीं विश्राम है ?

इस युवक कविने नवीन भारतको अपनी ऑखोसे देशका वास्तविक चित्र दिखाया :

दुर्भिक्ष मानो देह धरके घूमता सब ओर है,
हा अन्न ! हा ! हा ! अन्नका रव गूंजता सब ओर है,
आते प्रभञ्जनसे यथा तप-मध्य सूखे पत्र है,
लाखो यहॉ भूखे भिखारी घूमते सर्वत्र हैं।

जनता इस विषण्ण परिस्थितिमे है, मगर सामर्थ्यशील धनाढ्य वर्ग देशकी उन्नति मे योग देनेके बजाय ऐशो-आराममे लगा हुआ है। उसका आक्रोश उभर उठता है : वह व्यंग से कहता है

तुम मर रहे हो तो मरो, तुमसे हमे क्या काम है ?
हमको किसीकी क्या पड़ी है, काम है, धन धाम है।
तुम कौन हो, जिनके लिये हमको यहां अवकाश हो ,
सुख भोगते है हम, हमे क्या जो किसीका नाश हो !

भारतके इसी वर्गको इंगित कर कविने 'देशमे' गुणोकी स्थितिका वर्णन करते हुए कहा

है चाटुकारीमे चतुरता, कुशलता छल-छद्ममे,
पाण्डित्य पर-निन्दा-विषयमे, शूरता है सद्ममे !
कारीगरी है शेष अब साक्षी बनानेमे यहां।
है सत्य या विश्वास केवल कसम खानेमे यहां।
निज अर्थ-साधनमे हमारी रह गयी अब भक्ति है,
है कर्म्म बस दासत्वमे, अब स्वर्णमे ही शक्ति है।
पोशाकमे शुचिता रही, बस, क्रोधमे ही कान्ति है
—इत्यादि

'भारत-भारती' के इस व्यंगकी चोट आज भी अपना असर रखती है। इनको पढकर क्या उस समयका युवक विक्षुब्ध न हो उठा होगा ? उसी युवकको कविने ललकारकर कहा है

अब भी समय है जागनेका देख, आँखें खोलके।
सब जग जगाता है तुझे जगकर स्वय जय बोलके !

और फिर इस जागृत जन–समाजको वह प्रगतिका मार्ग दिखलाता है। उसे स्वयं वर्ण-व्यवस्थाकी प्राचीन रूढियॉ मान्य है, लेकिन जब वह कहता है :

विपरीत विश्व-प्रवाहके निज नाव जा सकती नहीं,
अब पूर्वकी बाते सभी प्रस्ताव पा सकती नही।

तो मानो वह अपने युगके उठते हुए वर्गकी आवाजको प्रतिध्वनित कर रहा है। वह युग, कविके शब्दोमें, अपनी भावनाओ और धारणाओको इस प्रकार साकार होते देख रहा था

व्यवसाय अपने व्यर्थ है, अब नव्य यंत्रोंके विना,
परतन्त्र हैं हम सब कहीं अब भव्य यन्त्रोके विना,
कलके हलोके सामने अब पूर्वका हल व्यर्थ है,
उस वाष्प-विद्युद्वेग-सम्मुख देहका बल व्यर्थ है।

प्राचीन हों कि नवीन, छोडो रूढियॉ जो हो बुरी,
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी,
सर्वत्र एक अपूर्व युगका हो रहा संचार है,
देखो, दिनोंदिन वढ रहा विज्ञानका विस्तार है।

और आज 'भारत-भारती' की यह एक बहुत बड़ी विशेषता मालूम होगी—जो कि अबसे तीस वर्ष पूर्वके साहित्यिकोंका एक सामान्य गुण अथवा सस्कृति-जन्य स्वभाव था—कि इसमे जातिगत कटुता अथवा सकुचित दृष्टिकोण कविने नहीं आने दिया। यह सच है कि दो-एक स्थलोपर कविका भाव कतिपय सकुचित-सा हो गया है। जैसे, एक स्थान पर कविको शोक प्रकट करना पडा कि "हाय वैदिक-धर्म-रवि था बौद्ध घनसे घिर गया!" और फिर इस बात पर सन्तोष कि, "भगवान शंकरने भगादी बौद्ध भ्रान्ति भयावही," पर ये पंक्तियॉ भी देखिये

हिसा बढी ऐसी कि मानव दानवोसे बढ गये,. .
तब शाक्य मुनिके रूपमे प्रकटी दयामयकी दया।

इसी प्रकार जहॉ यवनोके आत्याचारको भी भुलाया नहीं जा सका है, वहॉ दूसरी ओर यह भी स्वीकार किया है :

कम कीर्ति अकबरकी नहीं सत्शासकोकी ख्यातिमें,
शासक न उसके सम सभी होगे किसी भी जाति मे।
हो हिन्दुओंके अर्थ हिन्दू, यवन यवनोंके लिये .

आगे चलकर वे अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते है और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर इस तरह जोर देते हैं

हिन्दू तथा तुम सब चढे हो एक नौका पर यहा
जो एकका होगा अहित, तो दूसरेका हित कहा!

चरित्र-निर्माण और सास्कृतिक शिक्षाके लिये कविताका, एक अस्त्रकी भॉति, कैसे उपयोग किया जा सकता है, 'भारत भारती' सचमुच उसका मार्मिक उत्तर है।

आज फिर अनेक विषम समस्याओसे गुॅथने, उन्हे सुलझानेका सघर्षमय युग आ उपस्थित हुआ है, अब जातीय गौरव गाथाऐ रण-भेरियॉसी बन गयी है। सर्व जन साधारण, मजदूर, किसान, विद्यार्थी, स्त्री-वर्ग, नेता, विचारक, लेखक, कलाकार-सभी समाजो, समूहो, धर्मों, जातियो, वर्गोके लोग, सभी अपने-अपने दृष्टिकोणसे आजकी अपनी अवस्थाको समझने और समझानेमे दिलचस्पी ले रहे है। अस्तु, आज, दूसरे विश्वव्यापी महाभारतके बाद—जब सयुक्त लोक-शक्ति फासिज्मको, अन्तिम नहीं, तो निर्णयात्मक रूपसे अवश्य ही, हरा चुकी है; जब 'राष्ट्रीयता'की विभिन्न परिभाषाऍ देश-विदेशमें प्रचलित हैं, और 'स्वाधीनता', 'देश', 'जाति,' 'धर्म,' 'वर्ग,' 'शासन', 'जन-अधिकार,' आदिके **वास्तविक** रूप और उनकी **यथार्थ** सीमाएँ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंके अनुसार रोज-रोज निर्धारित और नियोजित होती हैं, और इस घनीभूत विषमताके विरोधमे सभी देशोंके दलित और

अपहृत् वर्ग संगठित मोर्चा बनाने लगे है, ऐसे समयमे—हमें क्या-कुछ आवश्यकता नहीं है अपनी स्वस्थ परम्पराओको उनके सच्चे रूपमें समझनेकी, उनसे शक्ति स्वास्थ्य और प्रेरणा लेनेकी; अपने भविष्य-निर्माणमे उनसे आवश्यक सहायता और योग प्राप्त करनेकी ? हमारे समाजकी स्वस्थ-भावुक आत्माको उसकी भारी आवश्यकता है: हमारे 'आर्य,' 'मुस्लिम,' 'सिख,' 'पारसी,' अथवा 'ईसाई' समाजको **ही** नहीं: बल्कि इनसे मिलकर बने पूरे भारतीय समाजको **भी** उसकी आवश्यकता है, ताकि देशके सभी लोग एक-दूसरेकी सामाजिक-सास्कृतिक-राजनीतिक परम्पराके प्रभावोसे पोषित-अनुप्राणित अपनी परम्पराको, सम्मिलित सत्यके आधारपर, आजकी आवश्यकताओके लिये, अपनी भावनामे सजीव कर सके। उस परम्पराका यथार्थ रूप हरप्पा और महंजोदारोसे भी पूर्व नाना रूपोमे व्याप्त, आदि मनुके समान, हमारे देश और हमारे प्राणोंमें अमर है। क्या है आज वह, उसकी प्रेरणाओका गुम्फित इतिहास क्या है---जनता समझना चाहती है उसका सम्पूर्ण सच्चा राग अपने प्राणोंमें भर लेना चाहती है। आज तो मनुष्य-मात्रके लिये उदार, विशाल सहानुभूतिकी शक्ति जिसके गम्भीर हृदयको सस्कार-रूपमे मिली होगी, वही केवल प्रखर सत्यका अन्वेषी, साहित्यिक--वह चाहे कवि हो या कथाकार---अपनी निर्भय वाणीमे देशकी अनेक प्राचीन-अर्वाचीन जातियो तथा भाषाओंकी "नाना पुराण निगमागमसम्मत" गाथाओ और इतिहासोका एक समन्वित राग हमारी आधुनिक परिस्थितियोसे लडती हुई भावनाओमे प्रवाहित कर सकेगा। यह असम्भव नहीं है। उसी परिमाणमे असम्भव नहीं, जिस परिमाणमे हमारा विश्वास आज हमारे देशकी शक्तियोमे अजेय और अक्षुण्ण है।

सम्प्रति ऐसी पृष्ठभूमिमे 'मुसद्दस' और 'भारत भारती' का गम्भीर अध्ययन न केवल खडी बोलीके नये साहित्यिकके लिये, बल्कि हिन्दी और उर्दूके साधारण पाठक के लिये भी, सर्व--विशेषकर सास्कृतिक---दृष्टिकोणसे, उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है।

दो गीत

भगवतीचरण वर्मा

एक

वह एक छोटा सा विहग,
अपनी उमंगोंमे उमग,
निज पख फैला चल पडा
उस नील-नभको नापने !

उरमे भरा विश्वास था,
स्वरमे भरा उच्छ्वास था,
विश्वास जीवनका भरा
उसकी विसुध प्रति सासमे !

थे मौन गिरि-पर्वत खडे
थे मौन वन-उपवन पडे,
वह गा रहा, वह जा रहा,
था सामने, बस सामने !

ऊंचा अधिक उडता गया,
ओझल हुई उससे धरा,
पर सामने नि सीम था—
उसके लगे पर कांपने !

*

दो

किसने कहा वह फूल है—
किसने कहा वह शूल है ?

प्रात: हुई, सब रूप है,
प्रात: हुई, सब रंग है,
दिनका प्रकाश उछाह है,
दिनका प्रकाश उमंग है !

पर मौन सूनी सी अमा
निज नास्तिकी ले कालिमा
नि:श्वास भरकर कह गई
जो कुछ यहां वह भूल है !

तब चेतना ले, ज्ञान ले,
नभ पर यहा मानव चढा,
रवि-शशि बने उसके नयन
नि:सीमको उसने गढा !

पर वह अचानक रुक गया,
पर शीश उसका झुक गया,
ले गोदमे उसको रानें
कह दिया तू धूल है !

फ़ोटोग्राफ़ी

सुनील जाना

फोटोग्राफीका जन्म पिछली शताब्दीमें हुआ था, और अभी १९३९ मे ही तो उसकी शत वर्षीय जयन्ती मनायी गयी थी। फिर भी आज चित्रकलाओमे सबसे सजीव कला फोटो ग्राफी ही है। छुट्टियोमे मनोविनोदके लिये कैमरा लेकर घूमनेवालो, और फोटो-चित्रोंके दुकानदारोसे लगाकर बड़े-बडे स्टूडियोमे काम करनेवाले व्यवसायियो, सिद्ध हस्त सिनेमा कैमरा-मैनो, अखबारके रिपोर्टरो, वैज्ञानिक कार्यकार्त्ताओ और ऐसे ही अन्य प्रतिभाशाली कलाकारोतक, हजारो लाखो व्यक्ति आज इस व्यसनके शिकार है। व्यवसायिक कलाकारोके अलावा, सैकडो व्यक्ति ऐसे व्यवसायोसे सम्बद्ध हैं, जो प्रत्यक्ष रूपमे इस कला पर आश्रित है, और सैकडो अन्य व्यक्ति फोटोग्राफीकी विभिन्न विशेष शाखाओसे सम्बन्धित है। सिनेमा और ब्लॉक बनानेके उद्योगोसे सम्बद्ध व्यक्ति पहली कोटिमें आते है। और आजकी दुनियामे ऐसे कम कार्य है, जो दूसरी कोटिमे न आते हो।

एक ऐसी वस्तु जो हमारे आधुनिक जीवनमे इतने व्यापक रूपसे समा गयी हो, निश्चय ही महत्वपूर्ण है, और उसकी उपेक्षा सम्भव नही है। लेकिन हमारे देशमे फ़ोटोग्राफी पर इतना कम लिखा गया है, और इस कलाका मूल्याकन करनेमे इतनी कम दिलचस्पी दिखायी गयी है, कि प्रत्येक गम्भीर फोटोग्राफर विचलित हो उठेगा।

फोटोग्राफीके विषयमे लोक-प्रतिष्ठित धारणाओके बन जानेका कारण शायद यह भी है कि फोटो लेनेका क्रिया बड़ी सीधी-सादी मालूम होती है--नौसिखियेसे नौसिखुआ भी बटन दबाकर सतोषजनक फोटो ले लेता है। फोटोग्राफीके क्षेत्रमे लालबुझक्कड़ोकी भी कमी नहीं है। उनकी लम्बी-चौड़ी डीगोने जिस व्यक्तिको शिकार बना पाया, उसमें असली फोटोग्राफीके समझने और परखनेकी सूझ-बूझ कभी बढ नहीं सकती। और हममे ऐसे कम ही लोग होगे, जिनको कैमराके ऐसे भूतोसे पाला न पडा हो। इसलिये, यह समझना जरा भी कठिन नहीं है कि फोटोग्राफीके विषयमे विवेकपूर्ण अध्ययन और पारायणका क्यो अभाव है।

इसपर, हमारे देशके व्यवसायिक फोटोग्राफरोकी कलाका धरातल भी गिरा हुआ है। इससे जनताकी रुचि बुरी तरह भ्रष्ट हो रही है। एक युग था जब डेगुअर अपने ग्राहकोको बड़ी देरतक एक तख्तेपर बॉधे-बैठाये रखता था ताकि वे हिल-डुल न सके। उन दिनो कैमरा फोटो खीचनेमे अधिक समय लेता था। बेचारा ग्राहक बड़ी देरतक उस रहस्यमयी मशीनकी ओर अपलक घूरता रहता था; लेकिन उस जमानेमे भी ऐसे फोटोग्राफ उत्पन्न हुए, जो फोटोग्राफीके इतिहासमें अमर है। और आज इतनी सुविधाओंके होनेपर भी इस देशके किसी स्टूडियोसे ऐसा कोई फोटो नहीं निकलता, जिसमे कलाकी

चटगाँवके जन-कवि श्री रमेश सील

[फोटो : सुनिल जाना]

ऊपर: काश्मीरकी वूलर झीलमे नौका विहार।
नीचे: मैसूर-राज्यका एक अकाल पीड़ित परिवार फोटो · सुनील जाना

तनिकसी भी झलक हो। कुछ अपवाद अवश्य है, लेकिन उनसे कोई मान स्थिर नहीं किया जा सकता।

कैमरा मनुष्यकी प्रतिभाकी श्रेष्ठतम रचनाओमेसे एक है। दुर्भाग्यवश, अक्सर तमाशाई बन्दरोके हाथमे भी पड़ जाता है। और तब उसकी सारी विशेषताओपर पानी फिर जाता है। फोटोग्राफीमे दृश्य-रूपकी प्रत्येक सूक्ष्माति-सूक्ष्म रेखाको अंकित करनेकी सामर्थ्य है, और उसकी क्रिया भी कोई कठिन नही है। इसी कारण, चित्राकनके सभी प्रकारके साधनोमे फोटोग्राफी श्रेष्ठ बैठती है। किन्तु बुरा हाथ लगने पर उसके गुण भी दुर्गुणोमे परिवर्त्तित हो जाते है।

वैज्ञानिकोको तो फोटोग्राफीके रूपमे मानो वरदान मिल गया--चाहे सूरज-ग्रहण हो, और चाहे खुर्दबीनके नीचे प्रति-क्षण बढते हुए जीवाणु, कैमरा निर्मम और तटस्थ होकर सही-सही चित्र उपस्थित कर देगा। लेकिन जब कैमरा कलाकारके हाथमे आया तो उसके सामने विकट समस्याये आ खडी हुई। इन समस्याओपर भी कालान्तरमे मनुष्यने विजय पायी।

लेकिन, बंदूककी जगह कधे पर कैमरा लटकाये हुए रँगरूट—जो दोनो कलाओके बारेमे कुछ भी नही जानते--जिन्दगीके रास्ते चलते न जाने कितने नर नारियोको शिकार बनाते है, आर प्रकृतिके सौदर्यका गला घोटते है। कारण यह कि चीजोके सौदर्यको कैसे 'देखा' जाय, इसकी भी मश्क करना पडती है। वे लोग यह सोच कर चलते हैं कि यह काम तो उनके बजाय कैमरा कर ही लेता है।

लेकिन, 'टेकनीक'----लेन्स, फिल्म, तस्वीर लेना, उसे धोना, प्रिन्ट बनाना—आदि के अलावा फोटोग्राफरकी शिक्षा-दीक्षाका सबसे बडा अग है चीजोको 'देखना' सीखना। प्रारम्भमे फोटोग्राफी चित्रकलाका अनुसरण करती थी। चित्रकलाके आकृति-अकन तथा रँग सम्बन्धी नियमोका पालन किया जाता था, और ऐसा प्रयत्न किया जाता था कि फोटोग्राफ देखनेमे हाथका बना हुआ दिखे। थोडे फोकससे तस्वीर लेना, उसकी पृष्ठ-भूमिको धुँधला और बिंदुमय बनाना अधिक 'कलापूर्ण' समझा जाता था। आज भी यह प्रवृत्ति शेष है, और आज भी ऐसे लोग है, जो किसी फोटोग्राफको लेकर हर्षो त्फुल्ल हो उठेंगे, और कहेगे—"बिलकुल हाथके बने चित्रकी तरह मालूम होता है।" और समझेगे कि बस किसी फोटोग्राफ और फोटोग्राफरकी इससे अधिक प्रशंसा क्या हो सकती है। प्रारम्भमे ऐसी प्रशंसा भी एक अच्छी चीज थी, क्योकि तब बच्चा अपने पाँव पर खडा होना सीख रहा था और आज भी बहुत हदतक आकृति-अकन, रँग-रूप, भाव-भंगिमाओ, रेखाओ और विषय-वस्तुपर केन्द्रीकरणके सम्बन्धमे फोटोग्राफी चित्रकलाके नियमोसे, बहुत अधिक भिन्न नियम पालन नहीं करती। अन्य कलाओसे उत्तराधिकारमे जो ज्ञान मिला है, उसका उपयोग तो फोटोग्राफी

करती ही है। लेकिन फोटोग्राफी यह चेष्टा नहीं करती कि वह चित्रकलासे प्रतिद्वंदिता करे। आज फ़ोटोग्राफीने अपनी दृष्टि-विशेषसे चीजोंकी ओर नजर डालना प्रारम्भ कर दिया है। उसकी दृष्टि रचनात्मक, स्फूर्तिवान, और भावोत्तेजक है। अब फोटोग्राफी किसी बडी आशासे चित्रकारीका मुँह नहीं जोहती। उसके अपने क्रियाशील हाथ-पॉव हैं, और उसका अपना कार्य-क्षेत्र है।

चित्रकार, रेखाओ और रगोंसे, मनमाना चित्र बना सकता है, लेकिन फोटोग्राफरके सामने सीमायें है। वह वही चीज प्रस्तुत कर सकता है जो उसे दिखाई देती है। लेकिन नजर उसकी अपनी है, अतएव जो चीज सुन्दर है, फोटोके योग्य है, उसीकी ओर देखने और उसका चित्र बनानेकी उसे पूरी स्वतंत्रता है। उसकी कलामें 'हेर फेर' करनेकी गुंजाइश थोड़ी है--अधिक नही। घूम-फिरकर वह ऐसा स्थल चुन सकता है, जहॉसे बढ़िया फोटो आये। यदि वह कमरेके अदर कृत्रिम रोशनीसे काम कर रहा है, अथवा बाहर खुलेमें विद्युत-प्रकाशका उपयोग करता है, तो सही ढगसे रोशनी डालकर वह किसी भी विषयका बढ़िया फोटोग्राफ बना सकता है। रोशनीसे ही फिल्मपर चित्र बनता है, इसलिये फोटोग्राफरकी तूलिका रोशनी ही है। वह इस तूलिकाको मनचाहे ढॅगसे इस्तैमाल कर सकता है। सही है कि विषयवस्तुको एक विशेष भाव-भंगिमामें रखना, और मनचाहे भावको अंकित करना अपने धैर्य और चातुरीकी परीक्षा करना है।

यह सम्भव है कि किसी विषय-वस्तुके फोटो लेनेका अवसर प्राप्त होने के क्षणसे बहुत पहले फोटोग्राफरने ठीक वैसा ही फोटो खींचनेका विचार किया हो, और फिर अकस्मात् ही वह अवसर प्राप्त हुआ हो। और यह भी हो सकता है, कि विषय-वस्तुमेंसे वह मन-चाहे विषयको छाटले, अथवा अनावश्यक भागको काट दे। यह बात फोटो लेते समय भी सम्भव है, और फोटोकी प्रिन्ट (छाप) बनाते समय भी। कहो तो वह निगेटिवका ९।१० वॉ हिस्सा साफ कर दे, और बाकी दसवें भागको भी सौन्दर्यपूर्ण एनलार्जमैण्टके उपयुक्त बना दे। निगेटिवसे छाप बनाते समय भी काफी हेर-फेर किया जा सकता है। अँधेरे कमरेमें प्रिंटके किसी स्थलपर रोशनी तनिक अधिक या कम डाल कर वह किसी स्थान विशेष पर आकर्षण पैदाकर सकता है, किसी भागको बिल्कुल गायबकर सकता है, और किसी भाव-भंगिमाकी रेखाको उत्पन्नकर सकता है। इसमें थोड़ेसे परिश्रम, जरासी चतुराई, और कुछ रचना कौशलके खिलवाड़की आवश्यकता है। जिसे इस खिलवाड़में आनन्द नहीं आता, या जो बिना सामने देखे 'शटर' इस्तैमाल करना चाहता है, या जो निगेटिव धोने और उसके प्रिन्ट लेनेमें दिमाग खर्च नहीं करना चाहता, उसे कैमरा छूनेका अधिकार ही क्या है।

फिर भी जहॉ तक कल्पनामूलक चित्रोंका प्रश्न है, फोटोग्राफर चित्रकारसे प्रतिद्वंदिता नहीं कर सकता। इस चीजके लिए कैमेरेके बजाय रग और तूलिका ही वास्त विक सामान है। फोटोग्राफीकी श्रेष्ठता तो उसके सौंदर्यपूर्ण यथार्थवादमें है, और

एक बार यदि फोटोग्राफर इस तथ्यको पहचान जाय तो भावुकसे भावुक कलाकार कभी ऊबेगा नहीं–बहुत रस प्राप्त करेगा।

फोटोग्राफी आजकी हमारी सस्कृति और हमारे जीवनको भविष्यके लिये जिस रूपमे सुरक्षित रखरही है, वैसी सामर्थ्य आज किसी अन्य कलामे नहीं है। मनुष्य समाजने सोवियत-समाजको स्थापितकर जो नया करिश्मा दिखाया है, उसकी सजीव कथा और झॉकी के द्वारा दुनियाकी जनताको प्रेरणा देनेमे हमारे युगके फोटोग्राफरोका कार्य, मायकोवस्की जैसे कवियोसे, कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। और नाजीवादके विरुद्ध घृणा–भाव पैदा करनेमें भी, नाजी-नजरबन्द कैम्पोकी जल्लादी के दिल कॅपानेवाले भयानक चित्रोका काफी बडा हाथ है। इन्ही चित्रोका प्रभाव था कि सारा ससार फासिस्टवादके विरुद्ध एक होगया, और इस वर्बरताको खतमकरके ही छोडा। युद्धकालीन पॉच वर्षोंमे नौसेना, थल-सेना, हवाई बेडे और अखबारोके हजारो फोटोग्राफरोने भावी सतानोके लिये एक-एक दिनकी एक-एक घटनाके फोटो सुरक्षित कर दिये हैं, और आज प्रतिदिन चित्रमय पत्रिकाओके लाखो पृष्ठ उससे रॅगे होते है। आजकी विश्रृंखलित दुनियामे फोटोग्राफीसे अधिक किसी अन्य कलाने हमारे समाजको प्रभावित नहीं किया है। फोटोग्राफी पोस्टरो, पत्रिकाओ, किताबो, विज्ञापनो, फिल्मो आदिके जरिये एक सदेशको, हूबहू उसी रूपमे, सारे ससारमे फैला देती है।

हालमे, रगीन फोटोग्राफी और असाधारण तेज फोटोग्राफीके द्वारा दैनिक जीवनके चित्रोको जितने सजीव ढॅगसे उपस्थित किया जाने लगा है, वह अभूतपूर्व है। एक सेकेडके दस-लाखवे हिस्सेके अदर ही कैमरेकी सूक्ष्म-दृष्टि कटोरेसे उबाले हुए सफेद दूधिया बिंदुओको मोतीके समान अकितकर देगी। ऐसे भी कैमरे है जो सूक्ष्माति–सूक्ष्म विषय-वस्तुका रगीन चित्र अकित कर सकते है। उनके द्वारा जो रगीन फोटो लिये जाते है, उनमे प्रकृतिके एक–एक कणके अदर चकाचौंधया देनेवाले महामहिम शिल्पकौशलके दर्शन किये जा सकते है। और इस दुनियामे सडक चलते ऐसी सैकडो आश्चर्यजनक वस्तुऐं मिलेगी। आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि हम उनके अस्तित्वके प्रति सजग हो। यह सजगता आती है, वर्षोंतक ऐसे करिश्मोकी खोजमे रहने, उनको देखने और पहचाननेमे कुशल होने, और कौनसी वस्तु महत्त्वपूर्ण है, यह अच्छी तरह समझनेके बाद! और इसके बाद तो जहॉ दीवाल पर एक किरणकी छायामे तीन धूल-धूसरित चिलबिल्ले लड़कोको और उनकी छायाओंको नीचे जमीन पर पडते देखा कि अॅधेरे कमरेमे ट्रे के अॅदर पडे हुए तैयार फोटोकी झलक ऑखोके अदर चमक जाती है। धीरे-धीरे अपनी सीमाये समझमें आने लगती है, और चित्र-रचना कौशलके और उसके सतुलनके विचार मस्तिष्कको परेशान करना बंद कर देते है। यह चेतना पैदा हो जाती है कि जो मन चाहता है वह सामने है। फोटो-योग्य दृश्य पहचानना एक सहज स्वभाविक प्रवृत्ति

बन जाती हैं। यह समझमे आजाता है कि विषय-वस्तुके कितना नजदीक जाना चाहिये, और फिर दृश्य-अन्वेषकके द्वारा चित्रकी कल्पना करते हुए एक क्षणमें लैंस, शटर, उद्घाटन अदि ठीक हो जाता है, और दूसरे ही क्षण चित्र लेकर चम्पत हो जाते है—उस एक क्षणमें बरसोके अनुभवका निचोड़ काम आता है। .

लेकिन हर बार मामला इतना सीधा नही होता..। कभी यह हो सकता है कि दिनभर घूमते-फिरनेपर भी एक भी चित्र हाथ न लगे। इसके अलावा कई तरहकी और बाधाये भी आ सकती हैं—जैसे चित्रके अदर बहुतसे रास्ता चलते लोगो का अनाधिकार प्रवेश या विषय-वस्तुका छटकना—दूर भागना, इस प्रकारकी परेशानियोपर भी काबू पाना पड़ता है।

दुनियामे विषय-वस्तुकी कमी नहीं है, यह प्रदर्शित करनेमें कि यह दुनिया कितनी सौदर्यपूर्ण और कौतुकमयी है, और यह प्रगट करनेमे कि जब हममेसे अधिकाश लोग मिल-जुलकर श्रेष्ठतर जीवन व्यतीत करनेका, और दुनियाको बदलनेका अर्थ समझ जायेंगे, तो दुनिया और भी अधिक सौदर्य और आकर्षणमयी बन जायगी, हम फोटोग्राफीकी कलाको लेकर जीवन-पर्यन्त कार्य कर सकते हैं।

और आज दुनियाको बदलनेवाले साधनोमे फोटोग्राफी श्रेष्ठतम अस्त्रोकी कोटिमे आयगी। उसे ऋण और समादर प्रगट करना पडेगा सिर्फ छापनेकी कला के प्रति।
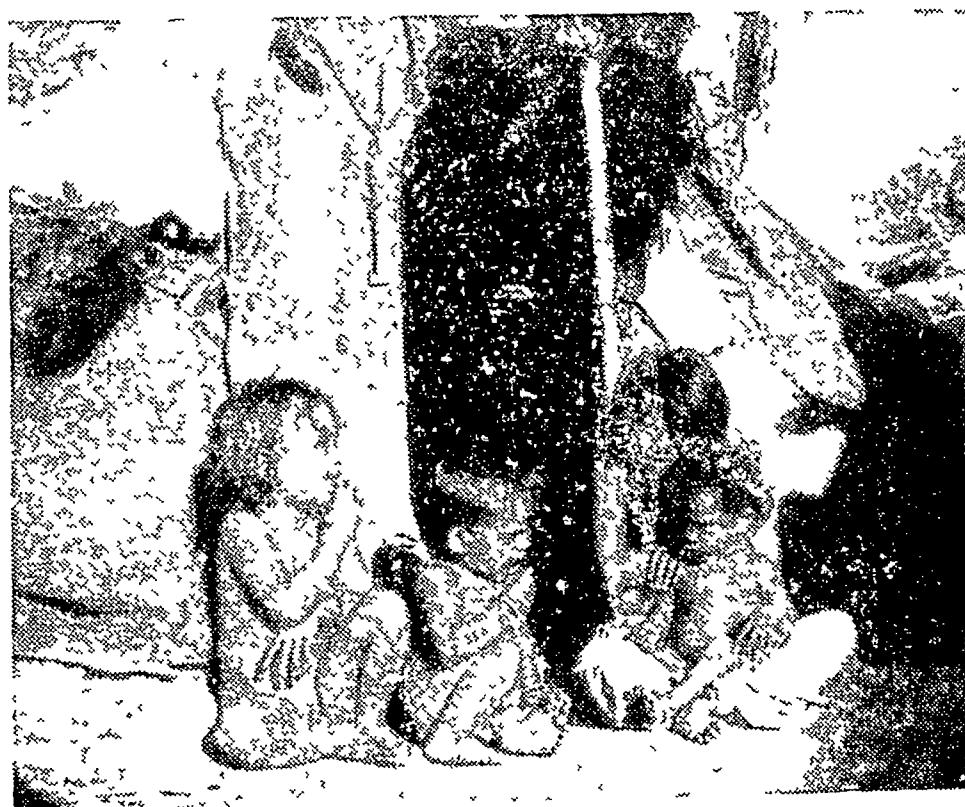
मजदूरोंके बच्चे [फोटो · सुनील जाना

नरेन्द्र शर्मा

दृष्टि-पथ पर

इस शून्य दृष्टि-पथ पर अजान
सुकुमार हंसिनीके समान,
शत इन्द्रधनुष तुम सँग लाई
लाई शीतल शशि-किरन-बान-
इस शून्य दृष्टि-पथ पर अजान,

जब सञ्ज्ञाशून्य चेतना थी,
तुम बनी तीक्ष्ण जागरण-बिन्दु !
जब पार्थिवताकी लगी आग,
बन गई सूक्ष्म सौन्दर्य-सिन्धु !
प्रिय नाम तुम्हारा मुझे आज,
बन गया, प्रिये, जागरण-गान—
इस शून्य दृष्टि-पथ पर अजान !

मेरे आगतके अंधकारके हेतु
बनी तुम मधुर मित्र !
तुम आंक गई तमके पट पर
चैतन्य-नयनका सजग चित्र !
दूरागत चरण-चाप मे, प्रिय,
मुखरित नव-जीवनका विहान—
इस शून्य दृष्टि-पथ पर अजान !

मै अभिलाषासेवी विषाद,
तुम सहज-बुद्धि आशा नवीन !
मैं चिर अशान्त जिज्ञासु भ्रान्त,-
तुम सुगम-नियम-विश्वास लीन !
तुम महिमा, मै विस्मित विचार,
तुम रूपशिखा, मैं शलभप्राण—
इस शून्य दृष्टि-पथ पर अजान !

तुमसे

मेरे मनकी दुर्बलतायें तुमसे प्यार दुलार चाहतीं !
मुरझाए उरको इच्छाए आशाका सचार चाहती !
बहुत दिनों न अश्रु छलके है,—
मन भारी, विचार हलके है !
रिक्त भावनायें अतृप्त है, स्नेहसिक्त मधुभार चाहती !
प्रिय तुम मेरे रोम रोम मे,
रमी रहो ज्यों अमृत सोम मे,
मेरी स्वप्न-सदृश छायायें सत्य स्नेह आधार चाहतीं !
बिछे जाल छलनाओंके जब,
मुझ न शकित करे पराभव,
शत अपूर्णतायें जीवनकी फिर फिर निठुर प्रहार चाहती !
मेरी सीमायें नैसर्गिक,
तुमसे बल पाकर हो स्वर्गिक
मर्यादायें लघुता मे तुमसे विशाल संसार चाहतीं !
आशा का शरदिन्दु उदय हो,
फिर पहला सुकुमार हृदय हो,
अहकार तज अभिलाषायें जीने का अधिकार चाहती !

अनजान में

हो गए अनजानमे, क्षणमे निछावर प्राण आज !
खोजने निकले, गए खो प्राण फिर मेरे स्वयम्
था न जीनेके लिए क्या प्राणि का जीवन अलम् ?
कौन पूछे, चाहते है प्राण क्या आदान आज !

कल्पना, जो परिधि रचती थी गगनमे नित नई,
केन्द्र किसको मान बैठी ? मुद पलक-दलमे गई !
विनय-विजडित दृग झुके ले विजयके अरमान आज !

क्या किसीके हेतु फिर सार्थक बनेगी साधना ?
इन्द्रधनुषी सेतु सुख-दुख पर धरेगी कामना ?
चाह युग-युगकी बनी क्षण-मात्रकी पहचान आज !

इंसान

रांगेय राघव

आखिर हम इंसान हैं।

अगर अधजला दिल किसीके अरमानोंकी वह भीषण चट्टान है जिसे चिताकी भयानक लपटे भी नहीं जला सकती तो मनुष्यका जीवन भी ऐसी ही एक अगम पहाडी है, जिसे कोई भी बिजली कितने भी वेगसे गिरकर चकनाचूर नही कर सकती। वास्तवमे इस सत्यके पीछे एक कार्य्यकारणकी शक्तिसे प्रेरित निर्ममता है। कितना भी उदास हो यह यौवन, किंतु क्या उसके एक क्षणके भूलेपनमें युगोका असतोष स्वयं तृप्ति बन कर नही छाजाता ?

बात यह है कि जिस दिन दिलीप, सतीशके घरसे चला उसका दिमाग तरह तरहके विचारोमे डूबा हुआ था। दिलीप भी अजीब है। उसके विचारोका भले ही सबसे सामंजस्य हो जाये,भले ही वह हँस-खेल ले, उसे मालूम होगा कि वह पानी पर तैरता एक बुलबुला मात्र है, किंतु उसका मन न जाने क्यो स्नेहके बंधनोसे बहुत दूर रहना चाहता है। बिदाईके समय किसीकी ऑखोमे उसने अपने लिये कोई विशेष नमी नही देखी। शायद मनुष्यको इससे बढकर कोई सुख नहीं। कितना अच्छा होता है वह सुपना, जो ऑखोमे आकर लय हो जाता है, और वह याद जो कसका करती है, दुख दिया करती है .

तो रक्खा उसने अपना अमरीकन बैग कंधे पर, और चल दिया स्टेशनकी तरफ। राहमें देखनेको क्या कुछ भी न था, लेकिन मजाल है, जो उसने कुछ देखा हो, उसे कुछ याद हो। उसकी धारा ही इतनी गहरी थी कि सॉस लेनेके लिये जब सिर उठाता था तो मन भीतर ही भीतर छटपटाने लगता था।

स्टेशन सुनसान था।

दिलीपने इधर-उधर देखा। गाडी आनेका कोई लक्षण नही। एक ओर मुसाफिरोकी भीड बाहर प्लेटफॉर्म पर बैठी ऊँघ रही थी। एक बाबूको आते देखकर दिलीपने अँगरेज़ीमे पूछा

'मेल आनेमे कितनी देर है ?'

बाबू रुका नहीं। चलते-चलते कहा, 'चार घंटा लेट है।'

दिलीपने मन ही मन कुछ अपमानका अनुभव किया। यह क्या बदतमीजी! हम पूछ रहे है और कमबख्त ढंगसे जवाब तक नहीं देता ? फिर देखा। एक अँगरेज औरत ने अवाज दी—

'बाबू !'

बाबू ठिठक गया।

मेमकी जीभ कुछ भीतरही भीतर लड़खड़ाई और शब्द निकले·'मेलका कितना बजे arrival है ?'

बाबूने नम्रतासे, प्रश्न हिंदीमे होते हुए भी अँगरेजीमें उत्तर दिया, जैसे आप क्यो हिंदी बोलनेकी तकलीफ करती है, मै खुद अँगरेजी बोलनेकी कोशिश करता हूँ। 'मैडम ! गाड़ी ढाई बजे आती है, लेकिन क्योंकि आज चार घटे लेट है, लिहाजा साढे छ· बजे आयेगी।'

मेमने बाबूको ऐसे घूर कर देखा जैसे यह सब बाबूकी गलती थी। और बाबू सशंक नयनोसे देखकर एक दफतरमे घुस गया।

दिलीपको एक हँसी-सी आई। बेचारा ! जिसे रेलके एक पुर्जेसे अधिक समझना शायद भूल होगी, क्योकि वह और कुछ नहीं।

कुछ देर खड़े रहकर ऊब जानेपर दिलीप प्लेटफॉर्मपर टहलने लगा। अनेक अनेक प्राती रियासतो अथवा छोटे-छोटे देशोकी मानवताके ये प्रतीक---इनके चेहेरे पर उत्साह क्यो नही ? क्यो है यह निराकार अचेतनता जो घुन बन, सब कुछ काट रही है ? सब व्यस्त है। सब अपने अपने काममे मग्न, प्रत्येक एक दूसरेको अपना शत्रु समझ रहा है।

इतनेमे एक ठहाकेकी आवाज ! वह फौजी है, वर्दी पहने। लोग उनसे बचकर निकलते है, औरते घृणासे ऑखे छिपाकर देखती है, डरती हुई सी, जैसे भेडियोको देखकर बकरी सहम जाती हो। वे लोग भद्दी गालियॉ बकते है । दिलीपको लग रहा है, काश यह भी इंसान होते ! किंतु, इन सबको अपनी इंसानियतसे मोह है, मोह ही उनकी जयका एकमात्र प्रतीक है, और यह जय पूँजीवादी समाजकी देन होनेके कारण केवल व्यक्तिगत सुख है, जिसमे हर रोटीका टुकड़ा खूनसे भीगा हुआ है।

एक बुढिया, उसके साथ एक औरत जिसकी उम्र जवानीकी है, जिसका तन अधेड़सा है, जिसकी ऑखोमे एक नीलापन है, जिसके सर्द गाल धीरे-धीरे खाकी होते जा रहे है। दोनो एक बक्स पर बैठी है। बुढिया बटुएमेंसे दो उँगलियॉ डालकर तंबाकू निकालकर पान भरे मुँहमे डाल रही है। उनके साथ दो बच्चे हैं–एक लड़का, एक लड़की। वह कम उम्र औरत उनकी मा है। कभी कभी देखनेमे नौकरानी-सी लगती है।

और दिलीप टहलता रहा।

एक व्यक्तिने कहा· 'बाबू पहली गाड़ी कौन छूटेगी ?'

'कहॉ को ?'

'आगरा ?'

'पसिंजर लेट है। आनेवाली है। पकड़लेना बस !—' एक कुलीने दूसरे कुलीका सामान उतारते हुए जवाब दिया।

दिलीप तेजीसे टिकट-घरकी तरफ चला। आगे जाकर पैर ठिठक गये। उस घमासानको देखकर, शायद राणासाँगा भी उसमे निहत्था घुसनेसे इंकार करदेता। भयानक शोर हो रहा था। यह भी इंसानकी जिंदगीकी दौड़ थी, जो गरीबीसे बेतहाशा दौड़े हुए कुत्तेकी तरह जीभ निकालकर हाँफ रही थी। बाहर सीटी बज रही थी। दिलीपने एकदम हाथ बढाकर कहा 'आगरा कैण्ट, सेकेंड क्लास'। अंदरसे बाबूने कहने वालेकी ओर देखा और मुस्करा कर पीछे वाले बाबूसे कहा 'अमा, तुम रेलवेकी क्लर्की कर रहे हो। लडाइकी नौकरी की होती।' दोनो जोरसे हँस पड़े। मन खट्टा हो गया दिलीप का। गोया वह कोशिश करके भी रईस नहीं कहला सकता।

दरवाजेमेसे निकलते ही देखा, एक भयानक रेला रेलपर टूटा पड रहा था जैसे एक जैकारेके साथ अब भारतमाताकी बेडियाँ टूटने ही वाली हो। दिलीपने आव देखा न ताव, लपककर डडा पकडा और सेकेंड क्लासमे घुस गया। सामने खडे गोरे सिपाहीने घूरकर देखा। और दिलीपकी आँखोंमे एक तेजी आगई। दोनो ऐसे खडे रहे जैसे जनम जनमके बैरी कुत्ते बिल्लीकी मुठभेड हुई।

जब दिलीपकी नजरने चैन लिया, डिब्बा भर चुका था। दोनो बच्चे खेल रहे थे। एक कोनेमे सामान, सामान पर सामान सिर्फ सामान, औरते खुद सामान, जिन्हे मर्द रख रहे थे, मर्द स्वयं सामान जिन्हे अभी-अभी कुलीने चढाया था

दोनो गोरे उतरकर चाय पीने चले गये थे। दिलीपको विस्मय हुआ। एक बर्थ पर चार औरते, दूसरी बिल्कुल खाली, तीसरी पर सात आदमी, जैसे एक ही डालपर बंदरोके अनेक बच्चे।

दिलीपने कहा 'उधर क्यो जगह छोड दी आप लोगोने ?' बडी मूँछोके एक ठाकुर साहबने समझदारी दिखाते हुए कहा, 'दो गोरे बैठे हैं न साहब ! क्यो ततैयाको छेड़ा जाये, और क्यो वह डक मारे ?'

बगलमे बैठे लालाजीने हँसकर व्यंगसे कहा 'आप ही न बैठ जाइये ?'

दिलीपके हृदयमे भीतर ही भीतर जैसे किसीने सुई चुभो दी।

लालाजीका सूट-बूटमे लैस साथी हँसा। दिलीपको लगा जैसे जहरका काढा पानीमे उबल रहा हो। सारा हिन्दुस्तान सिमटकर एक कोनेमे बैठा है, क्योंकि हुक्मरानके बैठनेका मतलब है उनका पैर फैलाकर आराम करना। दिलीपने देखा बंगाली बाबू ऊँघ रहा था।

जिस समय दोनो गोरे डिब्बेमें घुसे, उनकी नीली आँखों पर डिब्बेका सन्नाटा छागया। दिलीप गोरेकी आधी सीट पर चैनसे बैठा था।

गाड़ी चल दी। गोरोंने कुछ नहीं कहा। दोनों चुपचाप बैठ गये।

बच्चे ऊधम करने लगे थे। बुढिया दादी कभी कभी हँस कर उन्हें डॉट देती थी। लड़केने कहा

'दादी! तुम तो कभी साइकिलपर चढती ही नही।' डिब्बेमें सब लोग हँस दिये। ऊँघते हुए बंगाली बाबूने भी एक बार मुड़ कर देखा किंतु दोनो गोरे पत्थरोंकी तरह बैठे थे। बच्चोंकी ओर उनका कोई ध्यान नहीं था।

वे प्यारे प्यारे बच्चे। दूधसे धुले हुए। लड़कीने लड़केसे एक घूँघट काढ़े बैठी लडकीकी तरफ दिखा कर कहा 'देख बन्नू! पर्दा!'

लडकेने देखा। कहा 'हट! घूँघट!'

लड़की खिलखिला कर हँसी। एकदम मासे कहा 'अम्मा! मुँह क्यो ढक लिया है ऐसे?'

सब नीरव। मॉने धीरेसे फटकारकर कहा----'चुप रह।'

किंतु लडकीने फिर कहा 'दादी! कैसा मुँह ढॅक लिया है?'

दादीने मुस्कुराकर कहा, 'तेरा जब ब्याह होगा तब तेरे भी ऐसे ही घूँघट डालेंगे हम!'

'धत्', लड़कीने शर्माकर कहा और सब धीरेसे मुस्कुरा दिये।

लड़केने कहा 'मा! सीटी वज रही है।'

'सीटी कहते है?' माने टोककर कहा।

'तो?'

'विह्स्ल।'

'तो सीटी नहीं कहते?'

'नहीं!'

लड़का कुछ सोचने लगा। डिब्बेमें किसीके हल्के-हरके गुनगुनानेकी आवाज गूँज गई। पैसेंजरकी उस मौतकी सी धीमी चालमें वह गूँज ऐसे छा गई जैसे मरे हुए आदमी की लाशपर धीरे-धीरे बहुत दूरसे गिद्ध उतरने लगता है अपने पर साधता। गोरेने अपने साथीसे कुछ कहा। एक कर्कश आवाज। दिलीप समझा, शायद और कोई नहीं।

बंगाली बाबूने झुककर कहा· 'कहॉ जारहे है आप?' उनका स्वर बहुत धीमा था। अपनी सीमामें वह बादशाह थे। जोरसे बोलना शायद उनके लिये असम्भव था। गोरे ने सुना। फिर सक्षिप्त उत्तर दिया–'डेलही' (दिल्ली) जैसे अब कुछ मत पूँछना, इस बार उत्तर दे दिया है, इसे ही अपने ऊपर अहसान समझ लो।

मन उचट गया। दिलीपने बाहर देखा। गोरे खामोश बैठे थे।

बिलायतमें लेबर सरकार है। और यह हमारे शासक है। दिलीपके मन पर जैसे छिपकली रेग रही थी। गोरे बैठे रहे। फिर उन्होने सिगरेटे जला ली और खामोशीसे पीने लगे।

बाहर खेत है, भाग रहे हैं, उनके पीछे गाव है। वे कभी नही भागते, उनके निवासी भी स्थिर है, जमीन और आस्मान भी। सब लोग ऊँघने लगे दिलीप उठा। अपने बेगमेंसे एक किताब निकालकर पढ़ने लगा। गोरेने अपनी जगह बैठेही बैठे पढ़ा Pushkin (पुश्किन)।

और उसने घूर कर दिलीपकी ओर देखा। दिलीपने कोई ध्यान नही दिया। उस हिदुस्तानीके हाथमे वह किताब! रूसके महान क्रातिकारी कविका अगार स्वर! जारके साम्राज्यने उस पर अपना पूरा वार किया था और एक दिन मजदूरोने उस साम्राज्यकी जड़ोको खोदकरके फेक दिया .

गिद्ध बैठे है लेकिन पंजा नही गडा सकते क्योकि अब तो लाश भी जिदा है, क्योकि उसमें पानीकी जगह खून है, उसका गुस्सा भी ठंडा होकर तेजाबकी तरह दीवाना होचुका है।

आजादीका एक गीत। दिलीप पढ रहा है। गोरे देख रहे है। देख रहे है अपने वैभवके सामने सिर उठाते गुलामकी स्पर्धा। जिसके लिये उन्होने कोड़ोकी मालाओका इनाम दिया था। आज वह अपने जख्मोको गिना-गिना कर वार करना चाहता है, बदला लेना चाहता है

एक खँखारनेकी आवाज। बडे मियॉ उठकर पाखानेकी तरफ चले। गोरोने उनके लिये पैर भी नहीं हटाये। बडे मियॉने कहा --'साहब! जरा पैर हटानेकी इनायत फरमाएँ।

गोरा भुनभुना रहा है। साथी हँस रहा है, जैसे और बैठोगे इन लोगोमे। मलका विक्टोरियाकी-सी हँसी।

ठाकुर साहबने यकायक टोककर कहा--'ए मियॉ! इसमे खानेका सामान है।'

मौलानाका बढा हाथ रुक गया। पलटकर बोले 'तो आपने अपनी रेल समझी है? कहॉसे जाये? उठाइये इसे'! लडकीने घूँघट उठाकर देखा।

दिलीपको हँसी आगई। गोरा आरामसे आधी बर्थ पर लेटा है। दिलीप टॉग फैलाये है। और सामनेकी एक सीटपर बैठे खचाखच लोग इस रेलको अपनी और अपने बापकी जायदाद कहकर लड रहे है।

मनमे आया ठाकुर और मियॉजीके उठकर, कसकर, दो-दो चॉटे मारे। किन्तु यह नहीं हो सकता। इस फूटको रोकनेको जो भी होगा वह कानूनके खिलाफ होगा जैसे मजदूरका पेट-भर खानेके लिये हडताल करना, हिन्दुस्तानियोको आजादी मॉगनेका मखौल करना .

ठाकुर साहबने उठकर चादरमें बँधी बड़ी थालीको उठा दिया। सिया साहब पाखानेमें घुस गये। जब वे लौट आये ठाकुर साहबने थालीको वहीं रख दिया और अपनी जगह पर आकर बैठ गये।

पढते-पढते थक कर दिलीपने किताब बंद कर दी। एक गोरा ऊँघ रहा है। दूसरे की मुद्रासे लग रहा है वह दिलीपसे कुछ पूछना चाहता है किंतु दिलीपका मुँह कठोर है, जैसे स्वयं उसका, जिस पर गर्व है, घृणा है, तिरस्कार है, जैसे वह एक बड़ी हड्डीको काट कर काँचकी आँखे गढ़ कर बनाया गया हो।

गोरा उठा। उसका बक्स सबसे नीचे दबा पड़ा था। गोरेने बाँये हाथसे खानेके थालको उठाकर फर्शपर रख दिया। दाँये हाथसे बक्स सरका कर अपना बक्स मुक्त कर दिया। कुछ सामान निकालकर यूरोपियन पाखानेमे हाथ-मुँह धोने चला गया।

दिलीपने मुस्करा कर कहा 'ठाकुर साहब! यह क्या विलायतका कोई ठाकुर है?'

मौलाना ठठाकर हँसे। कोई उत्तर नहीं। दूसरे गोरेकी नींद टूट गई। और ठाकुर साहब ऐसे बैठे थे जैसे अब कुछ और कहते ही दाँत किचकिचा कर टूट पड़ेंगे।

साँझकी धुंध आकाशमे उतरकर खिड़कियोंकी राह रेलमे हवाके फर्राटो पर इधरसे आकर उधर निकल जाती थी। बाहर आकाशके कंधो पर खूनी रँगका कपड़ा झलक रहा था जैसे बहुत दूर एक लाल झंडा है, जो दुनियाके छोरपर खडा होकर आकाश और पृथ्वी दोनोको चुनौती दे रहा है। दिलीप मुस्कुराया। उस सन्नाटेमे जिंदगी पनाह माग रही है, जैसे आसमान नहीं, हमे सिर पर एक साया चाहिये, चाहे आसमानमे खुद खुदा ही क्यो न हो। गाड़ी रुक गई। दिलीप स्टेशन पर उतरकर घूमने लगा। तीसरे दर्जेमे भयानक भीड थी ही, एक दूसरी भीड़ ठेलमठेल कर रही थी। दिलीप देखता रहा।

काश, दिलीपकी जगह मौतके घाट उतारी गई मेरी एन्तोनेत होती तो सोचती जैसे बेस्टीलके दरवाजोपर प्रजा लहरोंकी तरह टकरा रही हो, मगर सम्राटकी कृपा है कि उन्हे रहमकी सजा दी गई है कि भटको। लेकिन दिलीपको लगा जैसे कुत्ते पकड़नेकी गाड़ी देखकर कुत्ते गिरफ्तार होने स्वयं टूट रहे हो और अदरवाले दम तोडकर उनपर भूँक रहे हो कि मरनेका अधिकार हमीको है, हमीको है। पतले दुबले एक बूढे मुसलमानने तडपकर कहा 'आया हिंदू मुसलमानका बच्चा। और वह बगलके डिब्बोंमे दो-दो एक-एक गोरे बैठे हैं तेरे बाप है! उनपर जाकर कानून चलाये तो देखे?' फिर जोरसे कहा 'आने दे वे उन्हे! बेचारे!'

दरवाजा नहीं खुला। उसका खुलना असम्भव था, क्योकि उसके पीछे सामान जो इंसानकी वपौतीका एक साँप सा है, जिसपर कोई हाथ रखे तो इंसान भी सापकी

तरह जहर उगलता है। लोग खिडकियोमेसे भीतर कूदने लगे, जैसे दोजखमे घुसनेकी कोई राह चाहिये.

दिलीप अपने डिब्बेमे लौट आया। तीसरे दर्जेके डंडे पकड़े कुछ लोग लटक गये थे। मौलाना कह रहे थे—'अबे दूसरा दर्जा है रुक जायेगी। अठगुने दाम देनेकी हैसियत है तेरी यह गद्दे '

अब गाड़ी आगरा छावनीपर रुक गई। बंगाली बाबूने उसी धीमे लहजेसे पूछा· 'गाड़ी कितनी देर ठहरेगी ?'

'एक घंटा ?,' पीछे खड़े होते हुए ठाकुर साहबने पूछा।

एक मरियल जवानने पतली आवाजमे कहा 'जी हॉ।'

शायद प्लेटफॉर्मपर चलते चलते किसीने मुड़कर देखा कि जिसकी आवाज इतनी सुरीली है वह न जाने कैसा होगा, और शायद यह सोचते हुए बढ गया कि रेडियो कितनी नायाब चीज है।

ठाकुर साहबने ताना मारते हुए कहा 'बलासे आपकी ।'

वे उतरनेका इंतजाम कर रहे थे। घूंघट लपेटकर अपनी उंगलियोकी 'वी' में से देखती कभी इससे टकराती, कभी उससे, लडकी भी खडी होगई। दिलीपको लगा वह एक हाथीका बच्चा था जिसे पहली ही बार सिकदरसे लडने भेज दिया गया था। लल्लूने उठकर अगड़ाई ली जैसे बिस्तर छोड़ रहा हो।

देखते-देखते सारा डिब्बा खाली होने लगा। गोरे उतर गये। एक तरफ सिर्फ दो औरते बच रहीं। बुढियाने दिलीपसे कहा 'बेटा ? तुम कहॉ जाओगे ?'

'जी, मै बस अगले स्टेशनपर उतर जाऊँगा।'

'तब फिर ?' अधेड़ औरतने न जाने किससे सवाल किया !

'कहॉ जायेगी आप ?'

'दिल्ली जायेंगे, बेटा ! अब तो इस गाड़ीमे इन गोरोके सिवा कोई बचा ही नहीं। कहॉ गये है जाने ? सरे सॉझ तो इनके सराब पीनेकी बेला है ?'

औरतोके चेहरे पर एक सहमी हुई छाया थी—जैसे अब ?

दिलीपने समझा। कुछ कहा नहीं। डिब्बेके दरवाजे पर खड़ा होकर बाहर देखने लगा। औरते चुप हो गई।

बाहर अपने-अपने डिब्बोसे निकलकर गोरे सिपाही खडे-खडे चाय पी रहे थे। उन्हे फौजी होनेके कारण चाय मुफ्त मिल गई थी। और वे हॅस रहे थे, क्योकि कुछ छोटे-छोटे लड़के हाथमे बुरुश लिये उनके जूतोंको मल-मलकर कह रहे थे—साब बख्शीश। साब बख्शीश।

कैसा अजब मजाक था। यह तो अंग्रेजोंने तब भी नहीं किया होगा, जब वे रोमनो के गुलाम थे, क्योंकि तब वे जंगली थे।

एक गोरेने छोटेसे लड़केको उठा लिया, और हवामें दो-चार बार घुमा दिया। गोरोंको आदत पड़ गई है। हर शहरमें उन्होने यही देखा है। यहाँ हिन्दुस्तानी काम करके भी अपनेको वेतनका, मजदूरीका हकदार नहीं समझता। जो मागता है, वही–साब बख्शीश, साब बख्शीश . .

और वे गिलबिलेसे लडके, जिन्हें देख कर यही लगता है कि इनके देशमें सदा ही अकाल होगा। यह एक पेट है। इंसान सिर्फ पेट हैं। पेटकी लाश पर अरस्तू है। अरस्तूकी लाश पर लोग कहते थे खुदा है, पर उसे आज तक किसीने नहीं देखा। दिलीपका हृदय विक्षुब्ध होगया।

स्वयं गोरोका हृदय मनुष्यके इस अपमानसे क्षुब्ध है। यही है क्या उनकी सल्तनतकी शान ? क्या योरपके लोगोने हिटलरी शहतीरोके नीचे दब कर यही नही किया ? और वे लड़के-लडकेसे दिलीपके हमउम्र गोरे। वह क्या देख रहे है ? उनकी ऑखोमे आज राष्ट्रका नाम लेकर धर्म अपनी दुहाई क्यो नहीं देता ? क्यो नहीं वे सफेद रँगके अभिमानी आज नफरतसे उन लड़कोमे ठोकर मार देते जैसे उनके बापदादोने उसे ईश्वरदत्त अधिकार समझकर आज तक किया है ? वे अपने पैरोको हॅसकर हटा लेते है। आज रईसको यह सोच कर झेप लग रही है कि ऐशका नाम देकर उसने अपने वैभवको दिखानेके लिए जिस औरतसे खेल किया है वह सिर्फ एक वेश्या है।

एक लड़केने कहा 'बाबू कुछ दे दो। दो दिनका भूखा हूँ।'

दिलीपने चौक कर देखा। वही लड़का जो अभी गोरेके हाथो पर था, सामने दयनीय सूरत बनाकर खड़ा था। और यह भी इंसानका बच्चा है जो परदेसीको हॅस रिझा कर उससे बख्शीश मागता था—पेटके लिये, और अपने देशवालेके सामने रोकर भीख मॉगता है–अपने देशके नामपर, पैसेवालेको उसके पैसोकी अभिशप्त गुलामीकी याद दिलाकर—पेटके लिये।

कहॉ है ईमान ? कहॉ है कोई भी आदर्श ? मनमें आता है, उससे पूछे—परदेसियोसे भीख मॉगकर क्यो देशके नामपर थुकवाता है। मनमे आया दिलीप पॉच रुपयेका अपना नोट उठाकर फेक दे—जा मत मॉग ऐसे, गोरे देखें, और समझें कि भारतमे कितना विक्षोभ है मगर गरीबी नहीं मिटेगी उससे, लड़का भिखारी ही रहेगा, और यह विक्षोभ भी केवल उनका रहेगा, जिनके पास पॉच रुपये होगे। इकन्नी दे दी, और दिलीपने देखा—लडका फिर उन्हीं गोरोके पास खडा था।

चीटी वहीं जायेगी जहॉ गुड है। पानी वहीं गिरेगा जहॉ गढ्ढा है। ऑखे वहीं अटकेगी जहॉ एक सुन्दर मुख होगा। भीखके हजार मुँह है। उनमें हजारो जहरके टुकड़े है जो मनुष्यकी सत्ताका एकमात्र संबल—उसका सम्मान डसकर मूर्च्छित कर देते हैं।

दिलीपकी घूरती ऑखोको देखकर वह मुँह फेरकर खड़ा होगया। जैसे उसे कोई मतलब नहीं। वह क्या कोई भीख मॉग रहा है ?

दो दिनका भूखा बच्चा है ! झूठ ही सही, मगर जिसकी जिन्दगीकी हवस ही भूखी है । वह क्या भीख माँगकर पाप करता है ? रुपयेवाले पाप करके भगवानसे प्रार्थना करते हैं । दयाकी भीख माँगते हैं । मगर वह इंसानसे भीख माँगता है, पेटके लिये । पेट भरना तो कोई पाप नहीं ? फिर यह कैसा बहाना ? कौनसा यह आत्मसम्मान इस लड़केमे बाकी है जो अब भी मुँह फेरनेका साहस इसमे शेष है ? इतना बडा झूठ बोलकर भी आज इस तनिकसे झूठ पर यह इतनी हिचकिचाहट ? क्योकि दिलीप देख रहा है । व्याकुल होकर दिलीपने ऑखे फेर ली । मै जब तुझे रोटी नही दे सकता तो क्या तुझे किसी भी तरह खाते हुए भी नहीं देख सकता ? काश, तेरा बाप एक पढा लिखा धनी होता और फिर देखता कि तू दर-दर, लोगोंके जूते साफ करके अपने पेटकी आग नहीं बुझा रहा है दीवाने, क्योकि उसे भी सिखाया जाता कि ' मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियोमे मिलता है । यह भी तेरे पिछले जन्मो का पुण्य ही होगा और तू भी पशुकी तरह फिर एक गुलाम देकर मर जा ।'

इसी समय उसका ध्यान टूटा । एक अधेड उम्रकी लंबी मेमने आकर खिडकी पर बैठी बुढ़ियासे कहा ' आप दिल्ली जायेगा ? '

बुढ़ियाने धीरेसे कहा ' हॉ ।'

' जगह है ? ' मेमने नम्रतासे पूछा ।

' आइये, आइये ' और फिर अपने साथकी जवान औरतकी तरफ देखा । जैसे, चलो ॲग्रेज है तो क्या, है तो औरत ? उस सात्वनाके आनंदमे मेमकी बच्ची उछलकर भीतर घुस आई । मेमने भी भीतर प्रवेश किया । बैराने समान रख दिया और बगलके नौकरोके डिब्बेमे चला गया । मेमने अपनी सिगरेट जला ली ।

बुढिया उसीकी ओर दॉत खिलाये देखती रही । अधेड़ औरत बाहर देखने लगी । कुछ देर डिब्बेमें सन्नाटा रहा । तीनों बच्चे इस समय आपसमे एक दूसरेको देख रहे थे । दोनो हिंदी बच्चे ॲगरेजी नहीं जानते, मेमकी बच्ची हिंदी नहीं जानती । अभी उन्हे मॉकी बोलीके अतिरिक्त और कोई बोली जाननेकी जरूरत भी क्या है ? कहॉ है उनके लिये देश ? इस समय तो वे सारे ससारमे एक है । कैसी भी सस्कृति हो, वे एक दूसरेके खेलोसे घृणा नहीं कर सकते ।

बच्चोने शोर मचाया, ' दादी ! दालमोठ ! पूरी । '

दादीने कहा ' अरे रात हो चली । खा लो । फिर सो जाना । '

बच्चे पूरी और मिठाई खाने लगे । उन्होने मेमकी बच्चीसे पूछा भी नहीं ।

मेमकी बच्ची थोड़ी देर अपनी बडी-बडी ऑखोसे देखती रही, फिर जैसे रहा नहीं गया । कहा ' ममी '

मेमने मुडकर देखा । पूछा ' क्या है ? '

ॲग्रेजी ही मे बच्चीने उत्तर दिया, ' भूख लगी है '

मेमने स्नेहसे देखा । फिर मुस्कुरा दी ।

और दिलीपने देखा, मेमकी वह खूबसूरत बच्ची अखबारके टुकड़ेमेंसे निकालकर डबल रोटीके मक्खन लगे टुकड़े खाने लगी।

दिलीपका मन हर्षसे कांप रहा है

यहाँ भूखका मतलब रोटी है। भीख नहीं। यहाँ घृणाके साम्राज्यमें यह मेम एक विजयिनीके रूपमें बैठी है, जिसने अपने अहंकारके दानवको गला घोटकर मार डाला है, यहाँ बच्चे न गुलाम हैं, न शासक. .

मेमकी यह बच्ची शाहजादी ऐलिजाबेथ न सही, किन्तु क्या इंसानियतकी पहली मंजिल तय नहीं कर गई। कब आयेगा वह दिन जब आदमी गुलामीके कौर निगलकर उगलनेका कठोर परिश्रम छोड़ देगा।

दोनों गोरे लौट आये। बच्चीने एककी ओर मुस्करा कर देखा। गोरेके मुँहपर हँसी नाच गई। वह प्रयत्न करके नम्र होना चाहता है।

किन्तु मेमने उसे एक नीरस शुष्क उत्तर दिया। वह उसकी ओर कोई दिलचस्पी नहीं लेना चाहती। और गोरा फिर भी नम्र है। स्त्रीकी यह अहम्मन्यता अब उसे स्वीकार्य है, क्षणभर पहले उसे यह असम्भव था क्योंकि शायद तब यहाँ सिर्फ गाय, भैंस और बकरियोंका जमघट था। उन दो बच्चोंकी सरलतापर जो व्यक्ति स्याहीकी दावात बना बन्द सा बैठा था, उस बच्चीकी एक मुस्कानपर वह जाना चाहता है — कठोर, जो घरसे दूर है, जिसका जीवन फौजकी एक बंदूक मात्र है . और वह इंसानियत और हैवानियतके गचके खा रहा है, जिसके दोनोंकी बैलगाड़ी बहुत धीरे चल रही है . सरक रही है

दिलीपका हृदय ऊब रहा है।

बच्चे आपसमें खेल रहे हैं, ऊधम कर रहे हैं, किलकारियाँ भर रहे हैं, साहबकी बच्चीके साथ, जैसे वे दोनों बराबर हैं, उनमें कोई फर्क नहीं, क्योंकि आज दोनोंके कोई स्वार्थ नहीं... .

सुना, प्लेटफार्म पर सेठ अपने साथीसे कह रहा है: 'देखिये ना, क्या जमाना है। आज मजदूरोंमें मिठाई बँटवाई कि चलो, इनका भला हो, मगर वे समझे, यह कोई हमारी बिल्कुल नई चाल है?'

एक झटका लगा। गाड़ी फिर चल पड़ी और ऐसे ही यह रुकती गिरती चलती ही चली जायगी। लेकिन दिलीपके दिलमें खयाल आता है कि वह मिठाई, मिठाई नहीं है, वह इंसानके रोटी मांगने पर उसे अस्मानकी ओर दिखाकर उसके ईमानके साथ जिना करना है, उसकी इंसानियतकी नींवें खोद खोदकर उनमें लुटी हुई-अस्मतकी हड्डियाँ बिखेरना है कि फिर जो मीनार खड़ी हो वह कभी न गिरे . नहीं ही गिरे. .

किन्तु बच्चे खेल रहे हैं और वे हँस हँसकर ही उसे गिरा देना चाहते हैं ..

उसका नामोनिशान मिटा देना चाहते हैं।

सोवियत रूसके प्रति

मलखानसिंह सिसौदिया

ओ युगान्तरके दमकते सत्य तमसावृत निशामें,
जागरणके चिर-अमुद्रित शुक्र-तारा-दृग उषामें,
अमर जीवन-प्रेरणाके अपरिवर्तनशील निश्चय,
विश्व-जन-कल्याणकारी क्रान्तिकी ओ कृति कलामय !

तुम समस्या जालसे मग बुद्धि-हरिणीको दिखाते,
ऐतिहासिक ग्रन्थियोंके विषम फन्दोंको छुड़ाते,
विश्वमें आये तिमिर-युग क्षितिज पर दीपित दिवासे
फूटकर निकली तुम्हारी ज्योति-धारा घन-घटासे !

गलित प्राय समाजके अति निम्नतम-स्तरसे उठाकर,
दैन्य-बन्धन-मुक्त तुमने कर दिया निर्माणका कर।
व्यक्ति विश्रृंखल बनाकर महत् सामूहिक समन्वय,
श्रम किया सौन्दर्यमय, चिर-विकृतिमय जीवन कलामय।

कल्पनाका स्वर्ग तुमने विश्व-जीवनकी पटी पर,
कर दिया साकार, श्रमकी सरल रेखाएं खचित कर।
झूठके तम-गहन-वनसे भटकता दर्शन निकाला,
सत्य-सांचेमें तुम्होंने ज़िन्दगीका स्वप्न ढाला।

जब कि धुंधले, टिमटिमाते बुझ गये गत-ज्ञान-दीपक,
भ्रान्त उत्तर खोजते थे प्रश्न-वनमें पथ प्रदर्शक,
प्रबल वैज्ञानिक भंवरमें अर्थ-शास्त्र भ्रमित हुआ था,
गत-व्यवस्थाके कगारों-सहित संस्कृति-तरु ढहा था,

तब प्रभंजन सरिस भंजन जीर्ण वर्ग-कपाट करते,
मुक्ति-जन-पथ खोल आये श्रृंखलाएं चूर्ण करते।
जातियोंका कुमुद-कानन शरद-राका-से खिलाकर,
ज्योत्सना युग-सांझ-नभसे तुम बिखेर उठे धरापर।

पर पलटकर चाहता था शिशिर मधु ऋतु कुचल देना,
चाहती थी सर्वदाको निशि उषाको निगल लेना,
और वक-दल चाहते थे राष्ट्र मीनोंको निगलकर,
राज-हंस-विहीन हो यह विश्व-मानस एक पोखर।

विकृतिसे सौन्दर्यकी तब मधुवनी तुमने बचायी,
आंधियोंके सिर चढ़ा कर नव-सृजन लतिका खिलायी।
निज रुधिर-सागर बहाकर प्रबल दावानल बुझायी,
वन्य-पशुओं सरिस जलती विकल मानवता बचायी।

देखकर बढ़ते, घुमड़ते ध्वंस-घनदल एशियापर,
युगल भुज यूराल पर्वत और कॉकशस—बढ़ाकर,
मार्ग रुद्ध किया, तड़ित तब तड़पती टूटी तुम्हीं पर,
किन्तु निज सीना बढ़ाया पीठके पीछे उसे कर।

दीप प्राणोंका जलाकर ज्योति अम्बरमें जगायी;
पूर्व नभकी कालिमा निज रुधिरसे धोकर बहायी।
चमन यौरपको बनाया, एशियामें गुल खिलाये,
नव प्रभात-अरुण किरणसे उपनिवेश-मुकुल जगाये।

नव धवल उत्सर्ग-गाथा त्यागकी मीनार बनकर
विगत-आगत ऐतिहासिक क्षितिजके धूमिल पटलपर,
चरण रखकर काल सागर-वक्षपर दीपित रहेगी;
अमित भारत तरणिका मग सतत आलोकित करेगी।

आपसकी फूट

जगदीशचन्द्र जैन

बहुत पुरानी बात है। गंगाके एक पट्टन ग्रामके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियोंका। वहां पर्वतके पाद-मूलसे बहुमूल्य सुगन्धवाला माल उतरता था। अजातशत्रु 'आज जाऊं,' 'कल जाऊं', ही करता रह जाता था और लिच्छवी लोग एक मत हो कर वहाँ पहले ही पहुँच कर मालको ले आते थे। प्रतिवर्ष ऐसा ही होता, अजातशत्रु बादमें पहुंचता, और लिच्छवियोंकी यह करतूत देखकर कुढ़ता। अजातशत्रु लिच्छवियोंसे युद्ध ठाननेकी बात सोचता, लेकिन वह यह सोच कर रह जाता, कि गणके साथ इस प्रकार युद्ध करना तो बहुत मुश्किल है।

एक दिन उसने सोचा कि किसी पंडितसे सलाह लेना चाहिए। उसने सोचा, इस विषयमें बुद्धकी अनुमति प्राप्त करना ठीक होगा। अजातशत्रुने अपने महामंत्री वर्ष-कार ब्राह्मणको बुलाया, और बुद्ध भगवानके पास जानेको कहा राजाने मंत्रीसे कहा कि हे मंत्री ! मेरी ओरसे भगवानको प्रणामकर उनका आरोग्य, सुख बिहार पूछनेके बाद निवेदन करना कि भगवान ! मगधका राजा वैदेही—पुत्र अजातशत्रु वज्जियोंपर चढाई करना चाहता है, तत्पश्चात् भगवान जो उत्तर दें, मुझे आकर कहना।

महामंत्री वर्षकार अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर सुन्दर यानोंको जुतवाकर राज गृहसे चला और गृद्धकूट पर्वतपर, जहां भगवान विहार करते थे, पहुंचा। कुछ दूरीपर अपना यान छोड़कर वर्षकार पैदल चलकर गया। और भगवानको अभिवादन करके

उनके पास बैठ गया। तत्पश्चात् जो अजातशत्रुने निवेदन किया था उसे बुद्ध भगवानसे कह सुनाया।

उस समय भगवानके प्रिय शिष्य आनन्द भगवानके पीछे खडे उन्हे पंखा झल रहे थे। भगवानने आनन्दको सबोधित करते हुए कहा—

(१) आनन्द क्या तूने सुना है कि जब तक बज्जी लोग किसी बातका निर्णय करनेके लिए बैठके (सन्निपात) करते रहेंगे। तबतक उनका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता।

(२) जबतक बज्जी लोग एक होकर बैठक करते हैं, एक होकर उठते बैठते है, अपना कर्तव्य पालन करते हैं, तब तक उनका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता।

(३) जब तक वज्जी लोग कोई गैर कानूनी काम नहीं करते, कानूनके खिलाफ नहीं जाते, तबतक उनका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता।

(४) जबतक बज्जी लोग वृद्धोका आदर-सत्कार करते है, उनके कहे अनुसार चलते है, तबतक उनका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता।

(५) जबतक बज्जी लोग कुल-स्त्रियोपर, कुल-कुमारियोपर दृष्टि नहीं डालते, तबतक उनका कोई कुछ नही बिगाड सकता।

(६) जबतक वज्जी लोग चैत्यो (देवस्थानो) की पूजा करते है, उनपर बलि आदि चढाते है, तबतक उनका कोई कुछ नही बिगाड सकता।

(७) जबतक बज्जी लोग अर्हंतो, साधु-सन्तोकी रक्षा करते हैं, तबतक उनका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता!

तत्पश्चात् भगवानने वर्षकारको संबोधित करते हुए कहा, कि जबतक कभी ह्रास न होनेवाले (अपरिहरणीय) सात धर्म वज्जियोमे मौजूद हैं और वे इसका पालन करते है, तब तक कोई उनका बाल बॅाका नहीं कर सकता। वर्षकारने भगवानके वचनोका अनुमोदन करते हुए कहा, भगवान्! आप ठीक कहते है, उक्त सात धर्मोंमे से एक धर्म भी वज्जियोंकी रक्षा करनेके लिए काफी है, अतएव अजातशत्रु उन्हें परास्त नहीं कर सकते। परास्त करनेका उपाय या तो उन्हे रिश्वत देना है या उनमे परस्पर फूट डालना। तत्पश्चात् वर्षकार भगवान्को अभिवादनकर वहॉसे चला आया।

वर्षकारने जो भगवानके मुखसे सुना था उसे अजातशत्रुको कह सुनाया। राजाने कहा—मंत्री यह तो तुम भी जानते हो कि हमारे पास इतने हाथी-घोड़े नहीं हैं जो इन वज्जियोको रिश्वत देकर अपने वशमे कर सके, अतएव उनमे परस्पर फूट डालना ही उन्हे जीतनेका अमोघ उपाय है। वर्षकारनेकहा—तो महाराज कोई षडयंत्र रचना चहिये। देखिये! आप ऐसा करे कि परिषदमे वज्जियोके सम्बन्धमें चर्चा उठाइये। उस समय मै कहूँगा—महाराज आपको उन लोगोसे क्या लेना है। वे लोग भी तो राजा है। आप उन्हें खेती वनिज द्वारा जीविका कमाने दे। उस समय आप अन्य सभासदोसे कहिये—देखोजी, वज्जियोके विषयमे हम कुछ कहते है तो यह ब्राह्मण उसका विरोध करता है। उसी दिन मे एक काम करूँगा कि वज्जियोको कुछ भेंट भेजूँगा। वस इसपर आप मुझपर राजद्रोहका दोषरोपण कर मेरा सिर उस्तरेसे मुडवा, नगरसे निकलवा दें।

उस समय मैं कहूँगा कि मैंने ही तुम्हारे नगरके सब प्राकार खाई आदि बनवाये हैं; मैं तुम्हारे नगरके गुप्त मार्ग और गम्भीर स्थानोंको जानता हूँ। याद रखना, मैं इस अपमानका बदला लिये बिना रहूंगा।

राजाने ऐसा ही किया। उसने अपने मंत्रीपर राजद्रोहका आरोप लगाकर उसे नगरके बाहर निकाल दिया। वर्षकार लिच्छवियोंकी तरफ बढ़ा। लिच्छवियोंके पास जब यह समाचार पहुंचा तो वे आपसमें कहने लगे—कि यह ब्राह्मण मायावी है, इसे गंगा पार न करने देना चाहिये। कुछ लिच्छवियोंने इसका विरोध करते हुये कहा, कि आप लोग देखते नहीं कि हम लोगोंका पक्ष लेनेके कारण ही तो उसे राजदण्ड दिया गया है। अतएव उसे आने देना चाहिये।

वर्षकार लिच्छवियोंके राज्यमें पहुंच गया। उसने लिच्छवियोंको सब हाल बताया। सुनकर सब लिच्छवी कहने लगे कि यह महान अन्याय है। थोड़ीसी बात पर इतना भारी दण्ड देना उचित नहीं। लिच्छवियोंने वर्षकारसे पूछा—वहां तुम्हारा क्या पद था? वर्षकारने कहा—मैं वहां महामंत्रीके पद पर था। लिच्छवियोंने कहा—आपको यहां पर भी वही पद मिलेगा।

वर्षकार लिच्छवियोंके बीच रहता हुआ न्याय करने लगा। उधर वह राजकुमारोंको भी शिक्षा देने लगा। इस प्रकार अपने गुणोंसे प्रतिष्ठित होजानेपर उसने सोचा कि अब मौका आगया है। एक दिन उसने एक लिच्छवीको बुलाया और उसे अलग ले जाकर पूछा—क्या तुम खेती करते हो? उसने कहा—जी हां। मंत्रीने फिर पूछा—दो बैलों से? उसने कहा—जी हां। इतना कहकर मंत्री चुप हो गया। उस समय पास ही एक लिच्छवी खड़ा हुआ था। उसने पहले लिच्छवी से पूछा—आचार्य क्या कहते थे? उसने कहा—कुछ नहीं, यही पूछते थे, कि तुम दो बैलों से खेती करते हो। लेकिन दूसरे लिच्छवीको अपने साथीके उस उत्तर पर सन्तोष न हुआ। और वह उसकी बातपर विश्वास न कर, उससे बुरा मान गया।

दूसरे दिन मंत्री एक दूसरे लिच्छवीको अलग ले-जाकर पूछने लगा—तुमने आज क्या खाया है? पासमें खड़े हुए एक दूसरे लिच्छवीने अपने साथीसे पूछा कि आचार्य क्या पूछ रहे थे। उसने बता दिया, लेकिन उसे विश्वास न हुआ और वह उससे बुरा मान गया।

तत्पश्चात् एक दिन वर्षकारने एक राजकुमारको एकान्तमें ले जाकर पूछा—क्यों राजकुमार, हमने सुना है तुम बहुत गरीब हो। उसने पूछा—महाराज यह आपको किसने कहा? मंत्रीने कहा—अमुक लिच्छवी कहता था। दूसरे दिन उसने एक दूसरे राजकुमारको अलग ले जाकर कहा—राजकुमार हमने सुना है तुम कायर हो। उसके पूछनेपर मंत्रीने कह दिया कि अमुक लिच्छवी ऐसा कहता था।

इस प्रकार तीन वर्षके अन्दर एक दूसरेकी चुगली लगाकर मंत्रीने उन लिच्छवी राजाओंमें परस्पर ऐसी फूट डाल दी कि दो आदमियोंने एक रास्तेसे जाना बन्द कर दिया।

एक दिन मंत्रीने सन्निपात-भेरी बजवाई, कि सब लिच्छवी लोग इकट्ठे हो जायें। लिच्छवी कहने लगे—हम क्यो जायें, जो लोग शूर-वीर हो उन्हींका काम है। मंत्रीने सोचा इससे बढकर अच्छा अवसर कौनसा हो सकता है? उसने गुप्त रीतिसे राजा अजातशत्रुको कहला भेजा कि लिच्छवियोपर चढाई कर दो। बस खबर पाते ही राजाने कूच कर दिया। वैशालीवालोको जब उसका पता लगा कि अजातशत्रु चढ आया है तो उन्होने भेरी बजवाई कि चलो, सब लोग इकट्ठे हो जॉय और शत्रुको गगा पार न करने दो। परन्तु लिच्छवी कहने लगे—ऐसे मौकेपर शूर-वीर ही जॉय, हमारा काम नही। बस, कोई भी न आया। उसके बाद दूसरी भेरी बजाई गई कि शत्रुको नगरमे न घुसने दो सब लोग जाकर नगरके द्वार बन्द करदें। लेकिन इसका भी कोई असर न हुआ। अन्तमे अजातशत्रु खुले द्वारोके अन्दर घुस आया और नगरीको तहस नहस करके वापिस लौट गया।*

---

* दीघनिकाय, महापरिनिव्वाणसुत्त, दीघनिकाय, अट्ठकथा, भाग २, पृ ५१६ आदि।

फ़िल्म परिचय

★ ज़ीनत

★ हम एक हैं

पिछले दिनो बम्बईमे इन दो फिल्मोने काफी शोहरत पायी है।

ज़ीनत एक मुस्लिम-बेवाकी कहानी है। जीनतका शौहर ब्याहकी रातको छुपकर अपनी बीबीसे मिला और उसकी गोद भरकर अगले ही दिन सिधार गया। किस्मतकी मारी ज़ीनत किसीको यकीन न दिला सकी कि उसकी औलाद उस रातके उसी गुपचुप मिलनका परिणाम थी। ससुरालसे निकाल दी गयी। घरसे ठुकरा दी गयी। समाजसे वहिष्कृत होकर दर-दरकी भिखारिणी बनी।

फिल्ममे उसकी इसी विपताका दुखदायी और बडा ही सच्चा चित्रण है।

विधवाओके साथ दुर्व्यवहार करनेमे हमारा समाज जात-पॉत नहीं देखता! इस सबवमे पूरी हिन्दू-मुस्लिम एकता है! इसलिये जीनतकी कहानी हिन्दुस्तानकी बेवा बेटीकी कहानी वन गयी है।

यह सही है कि फिल्मकारने इस पापको धोनेकी----कलकको दूर करनेकी कोई राह नही दिखायी। लेकिन पलटते हुए पर्दोंपर जीनतकी तकलीफोको देखकर वरबस दर्शकका क्रोध उमड आता है और वह सोचने लगता है कि समाजके मौजूदा निजामको बदले विना और औरतको आर्थिक रूपसे स्वतंत्र किये बिना इस वर्वरताको मिटाया नहीं जा सकता।

नूरजहॉका (जो जीनत वनी हे) एक्टिग स्वाभाविक और अच्छा है जिसके लिये उन्हे पदक भी मिल चुका है। उत्तर भारतीय मुस्लिम घरानेका वातावरण पैदा करनेमें डायरेक्टरको अच्छी सफलता मिली है।

फ़िल्म परिचय

हम एक हैं की कहानी कल्पित है। **ज़ीनत** अगर हमारे जीवनके एक पहलूका चित्रण है तो **हम एक हैं** में हमारी आशाओंकी प्रतिध्वनि है, हमारे उज्ज्वल भविष्यकी झाँकी है।

एक जमींदारिन माता है जो अकालके समय गाँवके गरीब बच्चोंको अपने घरमें शरण देती है। बच्चोंमें एक यूसुफ है तो एक जॉन और तीसरा शंकर है। टी अछूत है। मा सबको एक नजरसे देखती है। एक समान सबको पढाती-लिखाती है। बाद गाँवकी आदर्श मा, और आदर्श मालकिन बन जाती है।

पड़ोसी महाजनका लड़का भाइयोंको लड़ाकर परिवारकी एकता और शान्तिको मिट्टीमें मिला देता है। वे सब अलग-अलग हो जाते हैं। लेकिन गाँव पर मुसीबत पडती है—तो सब भाई फिर आ मिलते हैं और महाजनके लड़केके हथकण्डे खुल जाते हैं। किसान महाजनके घरमें आग लगाकर उसके आवारा और कुचक्री लड़केको मार डालना चाहते हैं। भाइयोंके बीच-बचावसे किसान शान्त हो जाते हैं। महाजन उनका नुकसान भरता है और उसके नालायक बेटेको गाँवसे निकाल दिया जाता है।

अन्तिम दृश्य, जब लाठी-बल्लमधारी किसान महाजनके घर पर इनकलाबी नारे लगाते हुए धावा बोल देते हैं, देखने लायक है। दर्शकके मुहसे अनायास निकल जाता है, "काश, मातृभूमि पर आयी मुसीबतको देखकर सब भाई आज गले मिल जाते और सात समन्दर पारके इन बगार महाजनोंको मार भगाते . . ."

पर फिल्म कथानककी दृष्टिसे या रोनकताकी दृष्टिसे बहुत सफल नहीं है। बहुत देर तक बात कुछ बनती नहीं मालूम होती—तस्वीर कुछ सच्ची नहीं लगती। टेकनीकल दृष्टिसे भी मैं उसे अच्छा नहीं कहूँगा। फिर भी लोग उसे चाहते हैं और चाहते रहेंगे, क्योंकि जैसा कि मैंने पहले कहा, उसमें हमारे सबके स्वप्नोंकी सुनहली तस्वीर है और अन्तमें हम उसी तस्वीरको हृदयमें लेकर उठते हैं।—र० सि०

नाटक और नृत्यकला

★ दीवार

★ अशोक मेधावीन

'पृथ्वी थियेटर्स' का दूसरा नाटक '**दीवार**' उनके पहले नाटक 'शकुन्तला' से अधिक लोक-प्रिय हुआ है। लोकप्रियताका प्रमुख कारण है उसका प्रसङ्ग। नाटक आज की सबसे उलझी हुई समस्या—हिंदू-मुस्लिम फूट—पर प्रकाश डालता है, और बतात है कि अंग्रेज हिन्दू-मुस्लिम फूटसे कैसे लाभ उठा रहे हैं।

कथानक गाँवके एक मुखियाके परिवारको लेकर चलता है। मुखिया बडा भा (कांग्रेस या हिंदुओंका रूपक) है, और उसके परिवारमें एक छोटा भाई, (मुस्लिमली अथवा मुसलमानोंका रूपक), दोनो भाइयोंकी पत्नियां आदि अन्य सदस्य है।

अशोक मेधांवीन का एक दृश्य

पुराने सामन्ती तरीको पर चलता हुआ यह परिवार पहले सुखी था, लेकिन वादमे तूफानकी तरह एक अँगरेज महिला आ गयी। उसने भाई-भाईको आपसमे लड़ाया, और परिवारको तोडने तथा शोपण जारी रखने की कोशिश की। अतमे गाँवकी जनता विद्रोहकर उठी, वडे भाईका हृदय-परिवर्तनका हुआ और वह पुराने ढँगसे काम चलानेके लिये तैयार हो गया। फिर भी अपने छोटे भाईकी जायज माँगोको माननेके लिये वह तैयार नही हो सका। जनता अँग्रेज महिलाको निकाल वाहर करने, और दोनो भाइयोको मिलानेमे इस तरह सफल हो जाती है।

नाटकसे दर्शको पर क्या असर पडता है, यह दर्शनीय है। दर्शक ब्रिटिश विरोधी वार्तालापो, और व्यगोको सुनकर खिल उठते है। लेकिन जब वे दोनो भाइयोको उस चालाक अग्रेजी महिला पर भरोसा रखते हुए देखते है, तो वे खिन्न होकर मौन रह जाते है। और जब भाई-भाईके आपसमे लडनेके दृश्य आये, तब तो कई जगहसे 'शेम' 'शेम' की आवाज उठी।

असलमे '**दीवार**' मे सिर्फ इकतरफा चित्र है। भाई-भाईकी आपसी फूटका कारण जहाँ अग्रेज महिला है, वहाँ एक कारण यह भी है कि वडा भाई अपनी सामन्ती मनोवृत्तिके कारण, छोटे भाईको परिवारमे समान और स्वतंत्र स्थान देनेसे इनकार करता है, और छोटा भाई शक्की और ओछे दिलका आदमी है। परिवारमे यह अदरूनी दोप पहलेसे ही मौजूद था। अगर इस तथ्यपर भी जोर दिया गया होता, तो अग्रेजोके छल-छंदोके साथ अपनी कमजोरीका भी वोध होता, और उसको सुधारनेकी आवश्यकता महसूस होती। यही कारण है कि अन्तमे भाइयोके मिलनकी वात कुछ मन नही भरती।

अभिनय और रंगमंच-व्यवस्था पहलेसे अच्छी है। पृथ्वीराजको हम रोमांटिक फ़िल्म-नायकके रूपमें देखते रहे हैं। लेकिन इस नाटकमें उन्हें गाँवके मुखियाके रूपमें सफल अभिनय करते देखकर हम आश्चर्य चकित रह जायेंगे। अन्य अभिनेता अभिनेत्रियोंने भी अपना अभिनय बखूबी किया है। नाटकका सम्पूर्ण वातावरण निभानेमें अच्छी सफलता मिली है।

अन्तमें, हर दर्शककी इच्छा होती है कि नाटक यदि इतना लम्बा न हुआ होता, तो अच्छा रहता। लम्बाई थका और उबा देनेवाली है। अंगरेजोंका मज़ाक जिस ढंगसे बनाया गया है, वह भी सस्तापन लिये हुए है। व्यंगोंकी मार्मिकता ब्रिटिश-विरोधी भावनाको और अधिक तीव्र और गम्भीर बनानेमें मदद करती।

यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि देशका युवा-वर्ग हमारे सांस्कृतिक जागरणमें दिलचस्पी लेने लगा है, और ज़िन्दगीको नयी रोशनीमें देखनेकी कोशिश करने लगा है। 'अशोक मेधावीन' इसका उदाहरण है।

इस नृत्य-नाटकमें अहिंसा और न्याय बनाम सैनिकवाद और आपसी संघर्षपर प्रकाश डाला गया है। कथानक बौद्धकालसे लिया गया है, और दिखाया गया है कि सम्राट अशोक बौद्ध भिक्षु मेधावीनकी सहायतासे किस प्रकार इन प्रवृत्तियोंसे संघर्ष करते हैं। स्पष्ट है प्रसंग बहुत व्यापक और गम्भीर है और इसको निभानेके लिये बड़े कौशलकी आवश्यकता है। यह नाटक लम्बा होनेके कारण शिथिल हो गया है। साथ ही दो दृश्योंके बीच काफ़ी बड़ा मध्यान्तर होता है, इसलिये भावावेग और तीक्ष्णता कम हो गयी है।

नाटकको संगीत-नाटक कहकर विज्ञापित किया गया है, लेकिन उसे पेन्टोमाइम (मूक-नाट्य) कहना ज़्यादा ठीक होता क्योंकि उसमें अभिनेता मूक-नृत्य करते हैं, और गायन पृष्ठ-भूमिसे होता है।

नाटकके दृश्य-दृश्यावलि और पोशाक वगैरह कुछ स्थलोंको छोड़कर, उपयुक्त और सफल हैं। नाटकमें काम करनेवाले ८० से अधिक कलाकारोंकी सहयोगी और संगठन-वृत्ति देखकर आश्चर्य किये बिना नहीं रहा जा सकता। इनमेंसे अधिकांशने शौक और सेवाके लिये इस कलाको ग्रहण किया है। घंटे-दो-घंटे समय निकालकर धैर्य-पूर्वक महीनों रिहर्सलके बाद उन्होंने इस कलामें इतनी दक्षता प्राप्त कर ली है, यही आश्चर्यकी बात है।

व्यक्तियोंमें महेन्द्र और यामिनी विशेष उल्लेखनीय हैं किन्तु नृत्योंकी वास्तविक श्रेष्ठताका श्रेय तो सबके सामूहिक सहयोग और सम्मिलित प्रयत्नोंको है, इसीलिये मैंने व्यक्तियोंपर जोर नहीं दिया है।

—शान्ता गांधी

महावीर वर्धमान

नरेन्द्र शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक[1] मे लेखक, श्री जगदीशचंद्र जैन एम. ए., पी-एच. डी. ने महावीर वर्धमानको भारतीय सस्कृति और चिन्तन-धाराके एक प्रतिनिधि महापुरुषके रूपमे देखा है। साम्प्रदायिक सकीर्ण दृष्टिकोणसे महावीरको दिव्य रूप भले ही दिया जा सकता, किन्तु उनका महान व्यक्तित्व तो एक प्रतिनिधि महापुरुषके रूपमे ही अधिक निखरता है और साथ ही यथार्थताकी कसौटी पर भी खरा उतरता है। लेखक इस दृष्टिकोग से बधाईके पात्र हैं।

तत्कालीन परिस्थिति तथा महावीरकी शिक्षा-दीक्षाकी पृष्ठभूमिमे चरित-नायकका विकास दिखाकर लेखकने आधुनिक शैलीसे तो काम लिया ही है, साथ ही विषय-वस्तुको अधिक बोधगम्य और महत्वपूर्ण बना दिया है।

महावीरकी घोर तपश्चर्या और उसके स्वरूपको लेखकने बडे ही सुबोध और रोचक ढॅगसे समझाया है। 'मृगचर्म धारण करना, नग्न रहना, जटा बढा लेना, सघाटिका पहनना और मुंडन करा लेना—यह सब बाते दु शील भिक्षुकी रक्षा नहीं करतीं।' या 'सिर मुॅडा देनेसे कोई श्रमण नहीं होता, 'ओम्' का जाप करनेसे कोई ब्राह्मण नहीं होता, जंगलमे वास करनेसे कोई मुनि नहीं कहलाता और कुशाके वस्त्र पहननेसे कोई तपस्वी नहीं होता। समतासे श्रमण होता है, ब्रह्मचर्यसे ब्राह्मण होता है, ज्ञानसे मुनि होता है तथा तपसे तपस्वी होता है।' 'जो मनुष्य सुन्दर और प्रिय भोगोको पाकर भी उनकी ओरसे पीठ फेर लेता है, सामने आये हुए भोगोका परित्याग कर देता है, वही त्यागी कहलाता है। वस्त्र, गध, अलंकार, स्त्री, शयन आदिका जो परवशताके कारण उपभोग नहीं करता, उसे त्यागी नहीं कहते।'—महावीर वर्धमानके ऐसे ही अनेक वाक्योके सकलन और उद्धरणसे लेखकने अपने बुद्धिवादी मतकी पुष्टि की है तथा विषय-वस्तु पर प्रकाश डाला है। लेखकका मत है कि महावीर वर्धमान यद्यपि घोर तप और पूर्ण निवृत्तिके प्रतीक हैं, किन्तु उनका जीवन-पथ लोक-सेवा और लोक-कल्याणकी दिशामे ही अपना लक्ष्य--परम-मोक्ष---खोजता है।

महापंडित श्री राहुल साकृत्यायन द्वारा लिखित 'जय यौधेय' को पढ़नेके बाद सामान्य पाठकके मनमे महावीरके प्रति जो गलत धारणा घर कर लेती है, उसपर विजय पानेके लिए प्रस्तुत पुस्तकका अध्ययन निस्सदेह सहायक सिद्ध होगा।

---

[1] **महावीर वर्धमान**· ले०—जगदीशचन्द्र जैन, एम. ए, पी-एच. डी, प्रकाशक· विश्ववाणी-कार्यालय, इलाहाबाद। मूल्य १।)।

सहानुभूतिसे रो देता है, पर लड़नेके लिये उभरता नहीं है। यह सच है कि समाज-व्यवस्थाका ढॉचा टूट रहा है, पर इसको मिटाकर एक नये समाजके निर्माणके लिये भी कुछ शक्तियॉ सघर्ष कर रही हैं। इन शक्तियोका वर्त्तमान आशामय और भविष्य गौरवपूर्ण है। हम जानते हैं, लेखक इन शक्तियोसे अपरिचित नही है। आशा है भविष्यमे वे इनको अपना विषय बनायेगे।

'पिंजरा' और 'अंकुर' की कहानियॉ मध्यवर्गीय जीवनकी सजीव चित्र है, अतएव इस वर्गमे उनका लोकप्रिय होना स्वाभाविक ही होगा।

'रातरानी'[1] का नवयुवक लेखक सामाजिक विषमताको एक रोमाटिक दृष्टिकोणसे देखता है। वेश्या, भिखारी, लूले-लॅगडे, गरीब जनोको लेखक सहानुभूतिसे देखता है, और उसकी भावुकता उसे कल्पनाके पंखो पर उडा ले जाती है। क्राति एक मोहक स्वप्न बन जाती है, एक ऐसा स्वप्न जहॉ क्रातिकारी एक अजीब रहस्यमय जीव प्रतीत होते है। सघर्षशील रिक्शा मजदूर चोट खाकर गिर जाता है। लेकिन समाज-दलिता वेश्या क्रान्तिकी अग्रगामिनी और प्रेरक बनती है। स्पष्ट है वास्तविक जीवनसे लेखकक सम्पर्क कम है। ये रोमाटिक कहानियॉ सम्भवत नवयुवकोमे लोकप्रिय होगी।

लेखकके हृदयमे सामाजिक विषमताके विरुद्ध क्रान्तिकारी क्षोभ है। आशा है, जीवनसे सम्पर्क बढाकर, वे और अधिक सबल और स्वस्थ कहानियॉ देगे।

हमारी क्रान्तिकारी परम्परा

राधेश्याम दुबे

गदर पार्टीके इनकलाबियोने[2] देशकी पूर्ण स्वतंत्रताके लिये उन दिनो सशस्त्र क्रान्तिका झण्डा उठाया था, जब हमारी राजनीति ब्रिटिश सरकारको आवेदन-पत्र देने तक ही सीमित थी।

पंजाबके ये सीधे-साधे किसान जीविका खोजने अमरीका गये थे, किन्तु अमरीकी इन गुलाम देशके लोगोको हिकारतकी नजरसे देखते थे। पग-पगपर अपमान सहकर इन्हे एक नयी चेतना मिली। इन्होने समझा कि गुलामीका क्या अर्थ है। इसी चेतनाके गर्भसे सन् १९१३ मे गदर पार्टीका जन्म हुआ। चन्दा जमा किया गया, शस्त्र खरीदे गये और उन्हे चलानेकी शिक्षा दी गई। १८५७ के ग़दरकी स्मृतिमे इस पार्टीने "ग़दर" नामक एक पत्र भी प्रकाशित करना प्रारभ किया। शीघ्र ही ग़दर पर्टीके सदस्योकी सख्या १२,००० तक पहुॅच गई।

क्रान्तिकी योजना बनाकर एक दिन इन्होने मातृभूमिकी ओर प्रयाण किया—भारत पहुॅचने पर कितने गोलीके शिकार बने, कितने फॉसी पर लटका दिये गये, कितनो को

---

१ **रातरानी**· शम्भूनाथ सिंह, प्रकाशक प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद, मूल्य १)।

२ **गदर पार्टीके इनकलाबी:** ले०—रणधीरसिंह, अनु०—राजीव सक्सेना; प्रकाशक जन-प्रकाशन गृह, बम्बई ४, मूल्य ८ आना।

बंगालके इन सपूतोकी वीरताका जोड़ मुश्किलसे मिलता है। आज भी चटगॉवके बच्चे-बच्चेकी जिह्वापर इन वीरोके नाम हैं।

भारतके इन क्रान्तिकारियोंने निराश होना कभी न सीखा। अण्डमानके बन्दियोंने साम्राज्यशाहीके पाशविक दमनका साहसपूर्वक सामना किया। जेलकी शान्त निर्जीव कोठरियोमे उन्होने नयी दुनिया और नयी विचार-धाराओका अध्ययन किया। पहले थोडेसे युवक साथी हाथमे हाथ मिलाकर आगे बढना चाहते थे, आज उनकी टोलीमें दुनिया भरकी जनता है। उनके क्रान्तिकारी जीवनकी जीवन-सरिता कम्युनिज्मके सागरमे आ मिली है।

इन वीरोके असीम साहस और अपूर्व बलिदानका दिग्दर्शन कराना और पाठकोको अनुप्रेरित करना प्रस्तुत पुस्तिकाओका उद्देश्य है।

इन पुस्तिकाओका महत्व इस कारण और बढ जाता है, कि ये इन घटनाओमें प्रमुख भाग लेने वाले अमर वीरोके सस्मरणोके रूपमे हैं। **'ग़दर पार्टीके इनक़लाबी'** पुस्तिकाको पार्टीके सस्थापक तथा प्रधान नेता बाबा सोहनसिह भखना द्वारा बताई बातोके आधार पर लिखा गया है। **'सरदार भगतसिह और उनके साथी'** के लेखक उनके साथी तथा लाहौर षड्यन्त्र केसके अभियुक्त स्वयं श्री अजय कुमार घोष हैं। और **'चटगांवके क्रान्तिकारी'** पुस्तिकाकी लेखिका हैं श्रीमती कल्पना दत्त, जिन्होने उस काण्डमें एक प्रमुख भाग लिया था तथा जिन्हें मृत्यु दंड केवल इसी कारण नहीं दिया गया कि वह स्त्री थी और उनकी अवस्था कम थी।

अत्यंत सरल और हृदयग्राही शैलीमे लिखी इन पुस्तिकाओको पढनेसे पाठक अपने गौरवपूर्ण अतीतकी स्मृतिमे आत्म-विभोर हो उठता है, पर साथ ही उसे देश की वर्तमान लज्जाजनक अवस्थाका बोध भी होता है। हृदयमे देशभक्तिकी अग्नि प्रज्वलित होती है और देशके भविष्यके सम्बन्धमे विश्वास द्विगुणित हो उठता है।

अतीतका गौरवपूर्ण इतिहास होनेके साथ साथ ये पुस्तिकाएँ भविष्यके लिए स्फूर्तिप्रद और प्रेरणापूर्ण सकेत भी हैं।

'अपनी रोटी, अपना राज !'

शमशेर बहादुर सिंह

बच्चनकी शैलीका विकास सन् '३०से ही हमारे साधारण हिन्दी पाठककी सुरुचिकी प्रगतिका मापदण्ड रहा है। कला-प्रकारकी दृष्टिसे **बंगालका काल**[1] हिन्दीमे नयी-सी चीज है। परिचित गद्य, पद्य, वार्ता आदिका कवितामे सोद्देश्य कलात्मक प्रयोगका परोक्ष **प्रभाव** ही नहीं, बच्चनने इस प्रबन्धके **मुक्त छन्दमें** पन्तका मूर्त भावानुगमन और निरालाका आडम्बर-रहित परुष प्रवाह अपनाकर, अपनी लिरिक शैलीको—जनताके राष्ट्रीय नारों

1. **बगालका काल :** रचयिता, बच्चन, प्रकाशक, भारती-भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रकाशित मार्च, १९४६। मूल्य १) पृष्ठ सख्या ६५। छपाई सुन्दर।

इस रचनाको दो-तीन बार बहुत ध्यानसे अगर पढ़ा तो हमें लगा कि कविको भावनाएं अकालकी वास्तविक स्थितिके गहरे विश्लेषणका पता नहीं देतीं। "अपनी रोटी, अपना राज!" यह सीधा सामयिक नारा बहुत भाव-मथनके बाद निकला है। फिर भी इससे सम्बन्धित बातोंपर सही जोर, और यथास्थान, नहीं दिया जासका। यदि अकालके मूल कारण पाठकके हृदयपर असंदिग्ध और स्पष्ट रूपसे अंकित हो पाते, तो भावोंकी भूमि कई गुना दृढ़ और शक्तिपूर्ण हो जाती।

अकालकी वस्तु स्थितिमें बच्चनने तीन चीजोंको उभारा है. शासकवर्ग, धर्म-व्यवसायी और धनी शोषक वर्गका पतन. इनके विरुद्ध एका करके संघर्ष करनेकी जरूरत; और यह कि रोटीकी लड़ाई आजादीकी लड़ाईसे सम्बन्धित है। बच्चन कहते हैं कि "बास्टील" पर सब मिलकर हमला करो–उस बास्टीलपर जो शासन, धर्म और पूंजीकी प्रतिक्रियावादी शक्तियोंने समाजमें खड़ा कर रखा है। मगर इस भीषण "बास्टील" का रूप वह पूरी-पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाये।

कलात्मक प्रभावके साथ उसकी भीषणता दिखानेके लिये अपने समयसे डेढ़-सौ साल पीछे, दूर, जाना शायद जरूरी नहीं था। प्रस्तुतसे कुछ-कुछ कतराना, प्रतिक्रियाको व्यंजनासे ही इंगित करना, जन-शक्तिकी आवाज संघर्षके बीचसे न उठा सकना, बल्कि दूरसे ही उसका आह्वान (चाहे जितना स्पष्ट) सुनना—भाव और कल्पनाकी ऐसी वृत्ति

अनिवार्यत उस मध्यवर्गी कलाकारकी है जो नयी तस्वीरोको पुराने आइनोमें लगाकर देखने के लिये वाध्य है। मगर यह **तभी तक** और **उसी हद** तक है, जब तक और जहाँ तक **आज** मध्यवर्गी कला अपना भविष्य श्रमिक और किसानके सघर्षोंके साथ नहीं देखती। आश्चर्यकी बात नहीं है अगर 'बंगालका काल' जैसी महत्त्वपूर्ण कृति भी अपने सामाजिक या "राष्ट्रीय" दृष्टिकोणको **एकांगी** बन जानेसे बचा न सकी। मुसलमान, जो बंगालके अकालमे हिन्दुओकी अपेक्षा कहीं अधिक सख्यामें मरे,–उनका, उनकी **लोक संस्कृति** का चित्र, कवितामे कहीं सजीव नहीं होता। इसी एकान्त मध्यवर्गी भाव-भूमि पर स्थित होनेके कारण ही शायद, कवि राजमहल पर आक्रमण करने वाले **फ्रांसीसी इनक़लाबियों** को एक भद्दी और 'गलत' उपमा दे देता है,—बलात्कार करने वालोसे (पृष्ठ ४८)। वह भावना यद्यपि विलासी राज-परिवारकी मन स्थितिमे समझनी चाहिये, पर प्रथम तो कविका दृष्टिकोण सदिग्ध सा लगता है, अगर ऐसा न भी माने फिर भी आवश्यकता पैदा होती है कि इस चित्रणके बाद इनकलाबियोका वास्तविक स्वस्थ रूप और कार्य, जो हम आज समझते हैं, पूर्वोक्त उपमाकी छायासे अलग, स्पष्ट कर दिया जाता, जो कि नहीं किया गया।

इन कुछ त्रुटियोके बावजूद 'बगालका काल' एक महत्त्वपूर्ण कविकी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें हम बाहरकी दुनियाके दुख-सुख, समस्याओ और संघर्षोंको अपने भाव और अनुभूतिमे लेनेके कविके गम्भीर प्रयासका एक खुला हुआ, नया जन-ग्राह्य रूप देखते हैं। श्री आर एन. देव-कृत आकर्षक कवर-डिजाइन कविता सा-ही सादा और व्यञ्जनापूर्ण है।

"किताबकी विक्रीसे जो लेखकाश (रौएल्टी) मिलेगा वह अकाल-पीड़ित बच्चो के सहायतार्थ भेट कर दिया जायगा।" हालीके लफ्जोमे—उम्मीद है कि दर्द फैलेगा और सच चमकेगा।

स्वर्गीय गहमरीजी

गत २० जूनको हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ लेखक श्री गोपालराम गहमरीका ८० वर्षकी आयुमे देहान्त हो गया। उनकी लेखनी अत तक नहीं रुकी। भारतेन्दु-युगसे मृत्यु-पर्यंत वे हिन्दीकी सेवा करते रहे। उनके उठ जानेसे हिन्दीका एक कर्मठ, और अनुभवी साहित्य-सेवी हमारे बीचसे उठ गया।

गहमरीजीकी प्रतिभा बहुमुखी थी। जासूसी-साहित्यकी तो उन्होने नीव ही डाली थी। इसके अलावा उन्होने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और निबन्ध भी लिखे। बॅगला और ॲगरेजीसे अनुवाद करके भी उन्होने साहित्यका भंडार भरा। कुल ग्रंथोकी सख्या १७० से ऊपर है। उनके मौलिक जासूसी उपन्यासोकी सख्या करीब ७० है, इसके अलावा उनके मौलिक सामाजिक उपन्यासोकी सख्या दस, और मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासोकी

जब 'सोनार बाँगला' श्मशान बन गया था

जब
गोरे साहब
और काले सेठ
बूढ़े-बच्चे के
मुँहका कौर छीनकर
मोटे हो रहे थे

तृप्ति भादुडी

और
३ लाख
नर-नारियोंने
दाने-दानेके लिये
तड़पकर
दम तोड़ा था

हमीद बट्ट

तब भी धरती के
प्यारे बेटों ने
जीवन के प्रति
अपना विश्वास
नहीं खोया

शम्भु मित्र

बंग-भूमिके उन्हीं वीर पुत्रोंके सुख-दुख, जीवन-मरणकी
दर्द भरी कहानी

धरती के लाल

निर्माता : दिग्दर्शक
ख्वाज़ा अहमद अब्बास

जन-नाट्य संघ का पहला जन-चित्र

केपिटल
बोरीबंदर

• हर रोज़ ४, ६–४, ९–३० वजे
• शुक्र, शनि, रवि : १ वजे
दोपहरको भी

रंगमहल लिमिटेड कृत
भूख
डा० सफ़दर 'आह'
कन्हैयालाल, गुलामहुसैन
दुलारे, आगाजान
नर्मदाशंकर, किरण
अनिल विश्वास
बी० के० बी० सनियस
रंगमहल लिमिटेड
अब्दुर्रहमान स्ट्रीट, बम्बई